अल-रिसाला

जुलाई-अगस्त 2025

अल-रिसाला
जुलाई-अगस्त 2025

CPS International
centre for peace and spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी
आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
फ़रहाद अहमद ,इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

ईमानी शख़्सियत का इर्तिक़ा	4
सेल्फ डिस्कवर्ड मारिफ़त	5
सही सोच का उसूल	7
तलाश-ए-हक़	8
शैतान का चैलेंज	10
ख़ुदा का ख़ौफ़	11
ज़िक्र की अज़मत	13
सहाबा और ताबेईन	14
सहाबा की एहतियात	16
एक क़ुरआनी पेशीनगोई	17
सेहत-ए-फ़िक्र	18
नजात क्या है?	20
तंगी का जीना	21
मुस्तक़बिल की तरफ़	23
साज़िश बेअसर	24
सब्र क्या है?	26
शॉक ट्रीटमेंट	27
सच्चा शुक्र	29
शुक्र का एक आइटम	30

फ़ख्र की ख़ुराक 31
शादी-शुदा ज़िंदगी 33
मोमिन का हथियार 35
ग़लत निशाने का मसला 36
सच्चाई की दरियाफ़्त 37
कामयाबी का उसूल 39
ख़ैर का रास्ता 41
साइंस का रुझान 44
ख़ालिक़ का वुजूद 45
सियासी इक़्तिदार 46
मैन मेड, गॉड मेड 49
स्पेन का सबक 53
डायरी 1986 55
हिकमत क्या है? 63
एक इंटरव्यू 64
सादगी की अहमियत 68

ईमानी शख़्सियत का इर्तिक़ा

पेड़ एक ज़िंदा चीज़ है, जो बड़ता रहता है।। दरख़्त का बीज या उसकी शाख़ जब ज़रख़ेज़ ज़मीन में लगा दी जाए तो वह अपने आस-पास से ग़िज़ा लेकर बढ़ना शुरू हो जाता है। यहाँ तक कि वह एक मुकम्मल दरख़्त बन जाता है। इस हक़ीक़त को क़ुरआन में इस तरह बयान किया गया है:

لَمْ تَرَ كَيْفَ ضَرَبَ اللَّهُ مَثَلًا كَلِمَةً طَيِّبَةً كَشَجَرَةٍ طَيِّبَةٍ
أَصْلُهَا ثَابِتٌ وَفَرْعُهَا فِي السَّمَاءِ ـ تُؤْتِي أُكُلَهَا كُلَّ حِينٍ
بِإِذْنِ رَبِّهَا وَيَضْرِبُ اللهُ الْأَمْثَالَ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُونَ

"क्या तुमने नहीं देखा, किस तरह मिसाल बयान फ़रमाई अल्लाह ने कलिमा-ए-तय्यिबा की। वह एक पाकीज़ा दरख़्त की मानिंद है, जिसकी जड़ ज़मीन में जमी हुई है और जिसकी शाख़ें आसमान तक पहुँची हुई हैं। वह हर वक़्त पर अपना फल देता है अपने रब के हुक्म से। और अल्लाह लोगों के लिए मिसालें बयान करता है ताकि वह नसीहत हासिल करें।"

(14:24-25)

दरख़्त का पौधा इस तरह बढ़ता है कि वह ज़मीन से अपनी ग़िज़ा लेता रहता है, मिसाल के तौर पर पानी, खाद और मिनरल वग़ैरह। दरख़्त की ग़िज़ा माद्दी ग़िज़ा होती है। इसके मुक़ाबले में मोमिन की ग़िज़ा ज़ेहनी ग़िज़ा होती है। मोमिन फ़िक्री मानों में अपने आस-पास की दुनिया से ग़िज़ा लेता है और इस तरह अपने ईमानी वुजूद को मुसलसल तौर पर बढ़ाता रहता है। यहाँ तक कि वह एक मुकम्मल मोमिन बन जाता है।

मोमिन की ग़िज़ा यह है कि वह अपने तजुर्बे और मुशाहेदे ऐसे सबक हासिल करे, जो उसके ईमान को तरक़्क़ी देने वाले हों, जो उसके अंदर आख़िरत का यक़ीन पैदा करें, जो उसके ईमान को बसीरत वाला ईमान बनाएँ, जो उसके अंदर वह सिफ़त पैदा करे, जिसको हदीस में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है:

أن يكون صَمْتي فِكْراً، ونُطْقي ذِكْراً، ونظري عبرة

"मेरी ख़ामोशी फ़िक्र की ख़ामोशी हो, और मेरा बोलना ज़िक्र का बोलना हो, और मेरा देखना इबरत का देखना हो। वह दरख़्त को शादाब होते हुए देखे तो उसकी ज़बान से यह दुआ निकले कि ख़ुदाया, मुझे आख़िरत में इस तरह सरसब्ज़ व शादाब बना दे।" (जामेअ अल-उसूल, ह०न० 9317)

सेल्फ डिस्कवर्ड मारिफ़त

शम्स मशरिक़ी (वफ़ात 1409 हि०) फ़ारसी ज़बान के एक शायर थे। उनकी एक ग़ज़ल की यह लाइन इंसान के सफ़र-ए-मारिफ़त की तरजुमानी करती है:

'ख़ुद कोज़ा व ख़ुद कोज़ागर व ख़ुद गिल-ए-कोज़ा'

ख़ुद ही घड़ा है, ख़ुद ही उसे बनाने वाला है, और ख़ुद ही उसकी मिट्टी है।

इसका मतलब यह है कि फ़रिश्ते बताई हुई मारिफ़त पर खड़े हैं। वह वही जानते हैं, जो ख़ुदा ने उनको बता दिया है (अल-बक़रह, 2:32)। इसके बरअक्स, इंसान को सेल्फ डिस्कवरी (self discovery) के ज़रिये

ख़ुदा की मारिफ़त हासिल होती है। जैसा कि अस्हाब-ए-रसूल के यहाँ तरीक़ा था कि वह अपने ईमान व मारिफ़त में इज़ाफ़े के लिए एक दूसरे से कहा करते थे:

تَعَالَ نُؤْمِنْ بِرَبِّنَا سَاعَةً

“आओ कुछ देर के लिए हम अपने रब पर ईमान लाएँ।

और फिर वह बैठकर अल्लाह तआला की आयात में ग़ौर व फ़िक्र करते थे।” (मुस्नद अहमद, ह०न० 13796)

असल यह है कि दूसरी मख़्लूक़ात अपनी तय की हुई फ़ितरत (instinct) के तहत अमल करती हैं। सिर्फ़ इंसान को यह ख़ास दर्जा मिला है कि वह अपने ज़ाती इरादे के तहत सोचता है और कामिल आज़ादी के साथ अपनी ज़िंदगी का नक़्शा बनाता है। यह सलाहियत सिर्फ़ इंसान को दी गई है, क्योंकि ख़ुदा ने इंसान को अपना रास्ता चुनने का पूरा इख़्तियार दिया है।

इंसान की इस ख़ुसूसियत को एक हदीस-ए-रसूल में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है:

क़यामत के दिन इंसान से बढ़कर अल्लाह के नज़दीक कोई भी इज़्ज़त वाला न होगा

مَا مِنْ شَيْءٍ أَكْرَمُ عَلَى اللهِ مِنِ ابْنِ آدَمَ

कहा गया: ऐ अल्लाह के रसूल, फ़रिश्ते भी नहीं?

आपने कहा: फ़रिश्ते भी नहीं। फ़रिश्ते मजबूर हैं, सूरज और चाँद की तरह। (शुअब अल-ईमान लिल-बैहक़ी, ह०न० 151)

क़ुरआन में बताया गया है:

हमने आदम की औलाद को इज़्ज़त दी और हम ने उनको ख़ुश्की और तरी में सवार किया, और उनको पाकीज़ा चीज़ों का रिज़्क़ दिया और हमने अपनी बनाई बहुत सी मख़्लूक़ात में इंसान को ऊँचा मक़ाम दिया। (17:70)

इंसान की इज़्ज़त-अफ़ज़ाई का मतलब है कि इंसान को सेल्फ डिस्कवरी पर मबनी मारिफ़त की सलाहियत दी गई है। यानी जिस तरह इंसान अपनी अक़्ल इस्तेमाल करके ख़ुश्की और समुंदर और काइनात को डिस्कवर करता है, और उससे अपने दुनयावी फायेदे हासिल करता है, उसी तरह उसको यह करना है कि वह अपनी अक़्ल को इस्तेमाल करके काइनात की निशानियों के ज़रिये ख़ुदा की मारिफ़त हासिल करे।

सही सोच का उसूल

एक रिवायत हदीस की मुख़्तलिफ़ किताबों में आई है। रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया कि अल्लाह ने कुछ चीज़ों को तुम्हारे ऊपर फ़र्ज़ किया है, तुम उनको ज़ाए न करो। कुछ चीज़ों को हराम ठहराया है, इसलिए उन्हें न करो।। अल्लाह ने कुछ हदें तय की हैं, तुम उन हदों से आगे न बढ़ो। ।

इसके बाद आप ने फ़रमाया:

وَسَكَتَ عَنْ أَشْيَاءَ مِنْ غَيْرِ نِسْيَانٍ فَلَا تَبْحَثُوا عَنْهَا

"कुछ चीज़ों के बारे में अल्लाह ने बिना भूले हुए ख़ामोशी रखी है तुम उन के बारे में बहस न करो।"

(सुनन दारक़ुत्नी, ह०न० 4396)

इस हदीस के आख़िरी हिस्से में जो बात कही गई है, उसका मतलब दूसरे अल्फ़ाज़ में यह है कि मुतअल्लिक़ (relevant) और ग़ैर-मुतअल्लिक़ (irrelevant) के दरमियान फ़र्क़ करना सीखो। तुम्हारी बहस व तहक़ीक़ मुतअल्लिक़ पहलू के बारे में होना चाहिए,

ग़ैर-मुतअल्लिक़ पहलुओं के बारे में बहस व तहक़ीक़ करना सिर्फ़ हलाकत का सबब बनता है। उसका नतीजा फ़िक्री उलझन के सिवा और कुछ नहीं।

मिसाल के तौर पर क़ुरआन की पहली आयत यह है:

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ (1:2)

इस आयत का एक पहलू यह है कि अल्लाह की हम्द और अल्लाह की नेमतों पर ग़ौर किया जाए। यह उसका मुतअल्लिक़ पहलू है। इस पहलू पर ग़ौर करने से ईमान में इज़ाफ़ा होगा। इसके बजाय अगर अल्लाह की ज़ात पर बहस की जाए तो इस क़िस्म की बहस एक ग़ैर-मुतअल्लिक़ बहस होगी, वह आदमी को सिर्फ़ कन्फ्यूज़न (confusion) तक पहुँचाएगी।

ग़ौर व फ़िक्र हमेशा डेटा (data) की बुनियाद पर होता है। अल्लाह की हम्द पर ग़ौर करने के लिए हमारे पास तख़्लीक़ की शक्ल में डेटा मौजूद है, लेकिन अल्लाह की ज़ात पर ग़ौर करने के लिए हमारे पास डेटा मौजूद नहीं। इसलिए पहली क़िस्म की बहस आदमी को यक़ीन तक पहुँचाएगी और दूसरी क़िस्म की बहस सिर्फ़ कन्फ्यूज़न तक। यह सही सोच (right thinking) का एक बहुत अहम उसूल है।

तलाश-ए-हक़

क़ुरआन की सूरह अद-दुहा में रसूलुल्लाह ﷺ सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को मुख़ातिब करते हुए इरशाद हुआ है:

وَوَجَدَكَ ضَالًّا فَهَدٰى

“ख़ुदा ने तुमको मुतलाशी पाया तो उसने तुमको राह दिखाई।”
(93:7)

God found you a seeker and gave you guidance

क़ुरआन की इस आयत में जो बात कही गई है, वह सिर्फ़ एक मख़्सूस फ़र्द की बात नहीं, बल्कि वह हर इंसान की बात है। हक़ीक़त यह है कि हर इंसान पैदाइशी तौर पर मुतलाशी (seeker) होता है। अगर इंसान अपनी फ़ितरत को उसकी इब्तिदाई हालत पर महफ़ूज़ रखे तो हर इंसान हक़ का मुतलाशी होगा, और अपनी फ़ितरत के ज़ोर पर सच्चाई तक पहुँच जाएगा। हक़ इंसान के लिए कोई अजनबी चीज़ नहीं, वह हर इंसान की अपनी फ़ितरत की आवाज़ है। लेकिन अमलन यह होता है कि पैदा होने के बाद इंसान एक बाहिरी माहौल में ज़िंदगी गुज़ारता है। यह बाहिरी माहौल हर एक इंसान को मुतअस्सिर करता रहता है। यह अमल मुसलसल तौर पर जारी रहता है, यहाँ तक कि इंसान की फ़ितरत बाहिरी असरात से मुकम्मल तौर पर ढँक जाती है। इंसान का हाल यह हो जाता है कि वह अपनी फ़ितरत की रौशनी में सोचने के बजाय बाहिरी असरात के तहत सोचने लगता है। इस अमल का नाम कंडीशनिंग है।

ऐसी हालत में हर इंसान का यह फ़र्ज़ है कि वह अपनी अक़्ल को इस्तेमाल कर के इस मामले को समझे। वह मुहासबा (introspection) के ज़रिये अपनी डी-कंडीशनिंग(deconditioning) करे। वह अपने आपको दोबारा मिस्टर कंडीशंड (Mr. Conditioned) से मिस्टर नेचर (Mr. Nature) बनाए। ऐसा करने के बाद ही आदमी उस रहनुमाई से फ़ायदा उठा सकता है, जो अल्लाह ने उस के लिए अपनी किताब और रसूल की सुन्नत की सूरत में मुहैया फ़रमाई है। जो आदमी अपने आप पर यह अमल जारी करने के लिए तैयार न हो, उसको कभी हिदायत की तौफ़ीक़ नहीं मिल सकती। हिदायत का तअल्लुक़ अव्वलन अपनी ज़ात से है और उसके बाद बाहिरी रहनुमाई से।

शैतान का चैलेंज

इंसानी तारीख़ के आग़ाज़ में शैतान ने अल्लाह रब्बुल आलमीन के सामने इंसान के तअल्लुक़ से एक चैलेंज किया था। क़ुरआन के अल्फ़ाज़ में वह चैलेंज यह था:

لَئِنْ أَخَّرْتَنِ إِلَى يَوْمِ الْقِيَامَةِ لَأَحْتَنِكَنَّ ذُرِّيَّتَهُ إِلَّا قَلِيلًا

"अगर तू मुझको क़ियामत के दिन तक मोहलत दे तो मैं थोड़े लोगों के सिवा उसकी तमाम औलाद को क़ाबू में कर लूँगा।"
(17:62)

ग़ौर करने से मालूम होता है कि शैतान का यह चैलेंज कंडीशनिंग का चैलेंज है, यानी इंसान को कंडीशनिंग में मुब्तला करना। कंडीशनिंग बिला-शुब्हा हर इंसान का सबसे बड़ा मसला है। कंडीशनिंग का नुक़सान यह है कि आदमी ज़ेहनी जुमूद (intellectual stagnation) का शिकार हो जाता है। वह चीज़ों को ऐज़ इट इज़ (as it is) देख नहीं पाता।

इंसान की यह कमज़ोरी है कि वह अपनी कंडीशनिंग को तोड़कर सोच नहीं पाता। हक़ीक़त के एतिबार से वो कंडीशनिंग में जीता है, लेकिन बतौर ख़ुद यह समझता है कि मैं एक साबित-शुदा हक़ीक़त पर जी रहा हूँ। यह ख़ुद-फ़रेबी इंसान के लिए सच्चाई को इख़्तियार करने में हमेशा सबसे बड़ी रुकावट साबित हुई है।

इसके मुक़ाबले में डी-कंडीशंड आदमी हालात से ऊपर उठकर सोचता है। इस बुनियाद पर वह सच्चाई को उसकी दुरुस्त शक्ल में देखता है और उसको क़बूल कर लेता है। हर आदमी की यह एक अहम ज़िम्मेदारी है कि वह अपनी कंडीशनिंग को दरियाफ़्त करे, और

वह सेल्फ हैमरिंग (self hammering) के ज़रिये अपने आपको कंडीशनिंग से फ़्री इंसान बनाए।

कंडीशंड फ़्री इंसान का बयान क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में आया है:

إِنَّ الَّذِينَ اتَّقَوْا إِذَا مَسَّهُمْ طَائِفٌ مِنَ الشَّيْطَانِ تَذَكَّرُوا فَإِذَا هُمْ مُبْصِرُونَ

"जो लोग डर रखते हैं, जब कभी शैतान के असर से कोई बुरा ख़्याल उन्हें छू जाता है तो वह फ़ौरन चौंक पड़ते हैं और फिर उसी वक़्त उनको सूझ आ जाती है।" (7:201)

इस आयत का मतलब यह है कि जब इंसान कंडीशनिंग से पाक होता है तो शैतान के फ़रेब को वह फ़ौरन समझ जाता है। इस तरह वह उससे बच जाता है कि हक़ को नाहक़ की सूरत में देखे और नाहक़ को हक़ की सूरत में।

ख़ुदा का ख़ौफ़

इस्लाम में ख़ौफ़-ए-ख़ुदा का तसव्वुर एक मुसबत तसव्वुर (positive concept) है। यह ख़ौफ़ बराए ख़ौफ़ नहीं है, यह ख़ौफ़ बराए डी-कंडीशनिंग है। इंसान का मामला यह है कि अपने हालात की बुनियाद पर कामिल तौर पर कंडीशनिंग का केस बन जाता है। इस कंडीशनिंग को तोड़ने के लिए एक ताक़तवर मुहर्रिक (strong incentive) दरकार है, और इस क़िस्म का ताक़तवर मुहर्रिक ख़ुदा के ख़ौफ़ के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

यही वजह है कि ख़ौफ़-ए-ख़ुदा का मसला सिर्फ मौजूदा दुनिया

के लिए है, आख़िरत के लिए नहीं। आख़िरत में जन्नत में वही शख़्स जाएगा जिसकी कंडीशनिंग मुकम्मल तौर पर टूट चुकी होगी। इसलिए जन्नत में ख़ौफ़ के लिए कोई जगह नहीं। (फ़ातिर, 35:34)

हर आदमी की परवरिश एक माहौल में होती है। आदमी रोज़ाना ऐसे माहौल से असर क़बूल करता है, यहाँ तक कि मुकम्मल तौर पर एक मुतास्सिर ज़ेहन (conditioned mind) बन जाता है। इस्लाह के लिए ज़रूरी है कि आदमी अपने इस ज़ेहन को बदले और फ़ितरी हालत पर अपने आपको क़ायम करे। यही वह हक़ीक़त है जिसको क़ुरआन की इस आयत में बयान किया गया है:

قُلْ كُلٌّ يَعْمَلُ عَلى شاكِلَتِهِ فَرَبُّكُمْ أَعْلَمُ بِمَنْ هُوَ أَهْدى سَبِيلاً

“कहो कि हर एक अपने तरीक़े (शाकिला) पर अमल कर रहा है। अब तुम्हारा रब ही बेहतर जानता है कि कौन ज़्यादा ठीक रास्ते पर है।” (17:84)

क़ुरआन की इस आयत में शाकिला से मुराद वही चीज़ है जिसको आज-कल की ज़बान में माइंड सेट कहा जाता है। हर पैदा होने वाला आदमी अपने हालात के ज़ेर-ए-असर ग़ैर-रब्बानी शाकिला में जीने लगता है। सही आदमी वह है जो इस हक़ीक़त को जाने और मुहासबा के ज़रिये अपने आपको रब्बानी शाकिला पर क़ायम करे।

अपने मुहासबे (self introspection) का यह अमल एक निहायत मुश्किल अमल है। इस अमल के लिए निहायत ताक़तवर मुहर्रिक दरकार है। ख़ौफ़-ए-ख़ुदा के ज़रिये यही मुहर्रिक इंसान के अंदर पैदा होता है। ख़ौफ़-ए-ख़ुदा के सिवा कोई और चीज़ इस अमल का मुहर्रिक नहीं बन सकती।

ज़िक्र की अज़मत

एक रिवायत हदीस की मुख़्तलिफ़ किताबों में आई है। रिवायत के अल्फ़ाज़ यह हैं:

قَالَ مُعَاذٌ : قَالَ رَسُولُ اللهِ صلى الله عليه وسلم : أَلَا أُخْبِرُكُمْ بِخَيْرِ أَعْمَالِكُمْ، وَأَزْكَاهَا عِنْدَ مَلِيكِكُمْ، وَأَرْفَعِهَا فِي دَرَجَاتِكُمْ وَخَيْرٍ لَكُمْ مِنْ تَعَاطِي الذَّهَبِ وَالْفِضَّةِ، وَمِنْ أَنْ تَلْقَوْا عَدُوَّكُمْ غَدًا، فَتَضْرِبُوا أَعْنَاقَهُمْ وَيَضْرِبُوا أَعْنَاقَكُمْ. قَالُوا : بَلَى يَا رَسُولَ اللهِ. قَالَ : ذِكْرُ اللهِ

"मुआज़ र० रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: क्या मैं तुम को न बताऊँ कि तुम्हारा सबसे अच्छा अमल क्या है? जो तुम्हारे रब के नज़दीक सबसे ज़्यादा पाकीज़ा अमल है, जो तुम्हारे दरजात को सबसे ज़्यादा बुलंद करने वाला है, और तुम्हारे लिए सोने-चाँदी के सदक़े से बेहतर है, और इससे भी बेहतर कि तुम अपने दुश्मन का सामना करो, तो तुम उनकी गर्दनें काटो और वह तुम्हारी गर्दनें काटें? सहाबा-ए-किराम ने कहा: हाँ, ऐ ख़ुदा के रसूल। आप रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: अल्लाह का ज़िक्र।" (मुस्नद अहमद, ह०न० 22079)

इससे मालूम होता है कि इस्लाम का निशाना किसी सियासी निज़ाम को बदलना नहीं बल्कि उसका निशाना फ़र्द की तामीर है। अगर सियासी निज़ाम को बदलना इस्लाम का निशाना हो तो क़िताल एक लाज़िमी ज़रूरत बन जाता है। लेकिन जब असल निशाना फ़र्द की सोच को बदलना हो तो उसके लिए क़िताल की कोई ज़रूरत नहीं।

सियासी निज़ाम को बदलने की राह में सबसे पहला काम यह होता

है कि क़ाबिज़ हुक्मरान से लड़कर उसको हटाया जाए। इसके बर-अक्स, फ़र्द की तामीर में क़िताल एक ग़ैर-मुतअल्लिक़ चीज़ बन जाता है। फ़र्द की तामीर हमेशा पुर-अम्न नसीहत के ज़रिये होती है, न कि हिंसक टकराव के ज़रिये।

ज़िक्र से मुराद सिर्फ़ ज़बानी विर्द नहीं है, ज़िक्र से मुराद वही चीज़ है जिसके लिए क़ुरआन में तदब्बुर और तफ़क्कुर के अल्फ़ाज़ आए हैं। ज़िक्र का मतलब यह है कि आदमी अल्लाह की आयात पर ग़ौर करे, यहाँ तक ख़ुदा की याद उसके ज़ेहनी तफ़क्कीर (thinking) का लाज़िमी हिस्सा बन जाए। यह अमल इस बात का ज़ामिन है कि उसके अंदर आला रब्बानी कैफ़ियात पैदा हों। उसका ज़ेहनी इर्तिक़ा मुसलसल तौर पर जारी रहे, उसकी रूहानी ज़िंदगी कभी ठहराव का शिकार न हो।

सहाबा और ताबेईन

इस्लाम में उस्वा की हैसियत दर्जा-ब-दर्जा पैग़म्बर ﷺ और आपके अस्हाब को हासिल है। क़ुरआन में आया है।

لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِي رَسُولِ اللهِ أُسْوَةٌ حَسَنَةٌ

“तुम्हारे लिए अल्लाह के रसूल में बेहतरीन नमूना है।” (33:21)

इस आयत के मुताबिक़, इस्लाम में असल उस्वा (मॉडल) सिर्फ़ पैग़म्बर का है। उसके बाद दूसरा दर्जा असहाब-ए-रसूल का है, यानी वह मुसलमान जो रसूलुल्लाह ﷺ के हम-असर थे, और जिन्होंने बराहे-रास्त पैग़म्बर-ए-इस्लाम से तर्बियत हासिल की। इस सिलसिले में क़ुरआन की एक रहनुमाई यह है — अगर वह ईमान लाएँ जिस तरह

तुम ईमान लाए हो तो बेशक वह राह पा गए। (2:137) दूसरे अल्फ़ाज़ में यह कि सहाबा किराम जिस ढंग पर ईमान लाए थे वही वह ईमान है जो अल्लाह के यहाँ असलन इज़्ज़त के क़ाबिल है।

इसके बाद तीसरा दर्जा ताबेईन का है, यानी वह गिरोह जिनको पैग़म्बर के तर्बियत-याफ़्ता लोगों की सोहबत हासिल हुई। हदीस के मुताबिक़, ताबेईन का गिरोह भी अस्हाब-ए-ख़ैर में शामिल है। (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 2651) इन तीनों के बाद किसी को मुस्तक़िल तौर पर मियारी मॉडल के एतिबार वह दर्जा हासिल नहीं। बाद के ज़माने में जो दर्जात मुक़र्रर किए गए हैं, वे सब दीन में अपनी तरफ़ से जोड़ी गई नई बातें (बिदअत) हैं। उनको दोबारा क़ुरआन व हदीस के मियारी पैमाने पर जाँचा जाएगा।

बाद के ज़माने में लोगों ने इसमें एक और गिरोह का इज़ाफ़ा किया, और वह है तबअ-ताबेईन का गिरोह। मगर यह एक इज्तिहादी इज़ाफ़ा है, वह बराहे-रास्त क़ुरआन व सुन्नत से अख़्ज़ किया हुआ इज़ाफ़ा नहीं। हक़ीक़त यह है कि सहाबा और ताबेईन के बाद तमाम अहल-ए-ईमान यकसाँ हैसियत रखते हैं। बाद के लोगों को मुकम्मल मानी में उस्वा (मॉडल) की हैसियत हासिल नहीं। बाद के लोगों को बराहे-रास्त तौर पर क़ुरआन व हदीस से जाँचा जाएगा, न कि ज़माना-ए-नुबुव्वत से क़ुर्बत की बुनियाद पर।

उस्वा ब-मानी मॉडल का मतलब यह है कि क़ाबिल-ए-पैरवी मॉडल। यानी एक शख़्स किसी तरीक़े पर अमल करना चाहे, और उसके पास रसूल और असहाब-ए-रसूल का साबित-शुदा नमूना मौजूद हो, तो उसको चाहिए कि वह इस नमूने की रौशनी में अपने अमल को अंजाम दे।

सहाबा की एहतियात

एक रिवायत हदीस की मुख़्तलिफ़ किताबों में आई है। सहीह अल-बुख़ारी के अल्फ़ाज़ यह हैं:

عَنْ عَبْدِ اللهِ بْنِ الزُّبَيْرِ، قَالَ : قُلْتُ لِلزُّبَيْرِ : إِنِّي لاَ أَسْمَعُكَ تُحَدِّثُ عَنْ رَسُولِ اللهِ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ كَمَا يُحَدِّثُ فُلاَنٌ وَفُلاَنٌ؟ قَالَ : أَمَا إِنِّي لَمْ أُفَارِقْهُ، وَلَكِنْ سَمِعْتُهُ يَقُولُ : مَنْ كَذَبَ عَلَيَّ فَلْيَتَبَوَّأْ مَقْعَدَهُ مِنَ النَّارِ

यानी, अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने अपने बाप ज़ुबैर से कहा, मैं आपको नहीं सुनता कि आप रसूलुल्लाह ﷺ से इस तरह बयान करते जैसा कि फुलाँ और फुलाँ बयान करते हैं। उन्होंने कहा — मैं कभी रसूलुल्लाह से जुदा नहीं हुआ। लेकिन मैंने आपको कहते हुए सुना कि जिसने मुझ पर झूठ बाँधा तो वह अपना ठिकाना जहन्नम में बना ले।

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 107)

इस हदीस में जिस चीज़ की वईद आई है वह रसूलुल्लाह की तरफ़ झूठी बात मंसूब करना है। जो आदमी अपने इल्म के मुताबिक़ सच्ची बात को रसूलुल्लाह ﷺ की तरफ़ मंसूब करे, उसकी अल्लाह के यहाँ कोई पकड़ नहीं। पकड़ उस इंसान के लिए है जो बिल-क़स्द ख़िलाफ़-ए-वाक़िआ बात को रसूलुल्लाह ﷺ की तरफ़ मंसूब करे। बिलफ़र्ज़ अगर नक़्ल-ए-रिवायत में कोई ग़लती हो जाए तो उसकी कोई पकड़ अल्लाह के पास नहीं है, क्योंकि पकड़ नीयत पर है। अगर आदमी की नीयत दुरुस्त है तो ज़रूर उसको हक़ बात फैलाना चाहिए।

जिन असहाब ने ऐसा किया, बज़ाहिर उन्होंने एहतियात की बुनियाद पर किया। लेकिन मेरे नज़दीक यह इज्तिहादी ख़ता का मामला है। इसलिए कि एक सहाबी के पास रसूलुल्लाह ﷺ की एक बात है, और उसने उसको क़ौल-ए-रसूल की हैसियत से नहीं बताया, और

उसी हालत में वह दुनिया से चले गए। तो उनका केस इज्तिहादी ख़ता का केस कहलाएगा। क्योंकि रसूलुल्लाह ﷺ सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज्जतुल-विदा के मौक़े पर तमाम सहाबा को वाज़ेह अल्फ़ाज़ में यह तल्क़ीन की थी:

فَلْيُبَلِّغِ الشَّاهِدُ الغَائِبَ، فَرُبَّ مُبَلَّغٍ أَوْعَى مِنْ سَامِعٍ

"तुम में से जो हाज़िर है वह ग़ायब को पहुँचा दे। हो सकता है कि जिनको पहुँचाया जा रहा हो, वह सुनने वाले से ज़्यादा समझने वाला हो।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1741)

एक क़ुरआनी पेशीनगोई

क़ुरआन की सूरह अल-नहल में इर्शाद हुआ है:

"और अल्लाह ने चौपायों को बनाया। उनमें तुम्हारे लिए पोशाक भी है और ख़ुराक भी और दूसरे फ़ायदे भी, और तुम उनमें से खाते भी हो। और उनमें तुम्हारे लिए रौनक़ है जबकि शाम के वक़्त तुम उनको लाते हो और जब सुबह के वक़्त तुम उनको छोड़ते हो। और वह तुम्हारे बोझ ऐसे मुक़ामात तक पहुँचाते हैं जहाँ तुम सख़्त मेहनत के बग़ैर नहीं पहुँच सकते थे। बेशक तुम्हारा रब बड़ा शफ़ीक़, मेहरबान है। और उसने घोड़े और खच्चर और गधे पैदा किए, ताकि तुम उनपर सवार हो और ज़ीनत के लिए भी, और वह ऐसी चीज़ें पैदा करता है जो तुम नहीं जानते —

यहाँ "और वह ऐसी चीज़ें पैदा करता है जिन्हें तुम नहीं जानते" के अल्फ़ाज़ जिस संदर्भ (context) में आए हैं, उस पर ग़ौर करने से एक

अहम हक़ीक़त मालूम होती है। सियाक़ की निस्बत से इसका मतलब यह होगा कि अल्लाह ने नक़्ल व हम्ल के लिए मालूम हैवानात के अलावा कुछ और चीज़ें इमकानी तौर पर पैदा की हैं, जिनका इल्म तुम मुस्तक़बिल में हासिल करोगे।

हक़ीक़त यह है कि क़ुरआन की इस आयत में एक पेशीनगोई की गई है। वह यह कि क़ुरआन के नुज़ूल के वक़्त ट्रांसपोर्ट और कम्युनिकेशन के लिए इंसान के पास सिर्फ़ हैवानी ज़राए हैं, लेकिन बाद को फ़ितरत (nature) में कुछ ऐसी चीज़ें दरयाफ़्त होंगी जिसके बाद ट्रांसपोर्ट और कम्युनिकेशन के मशीनी ज़राए इंसान की दस्तरस में आ जाएँगे। इस आयत में दरअसल बाद को आने वाले उस दौर की पेशीनगोई है जिसको मौजूदा ज़माने में कम्युनिकेशन का दौर (age of communication) कहा जाता है।

इंसानी तारीख़ का हैवानी नक़्ल व हम्ल के दौर से निकल कर मशीनी नक़्ल व हम्ल के दौर में पहुँचना बिला-शुब्हा एक अज़ीम वाक़िआ है। इस वाक़िए ने न सिर्फ़ इंसान के लिए सफ़री सहूलियत का एक नया दरवाज़ा खोल दिया है, बल्कि इसने इसी के साथ दीन-ए-ख़ुदावंदी के लिए नए इमकानात भी पैदा कर दिए हैं। इसका तक़ाज़ा है कि अहल-ए-ईमान न सिर्फ़ शुक्र-ए-अज़ीम का सुबूत दें, बल्कि वह आलमी सतह पर मंसूबा-ए-तख़्लीक़ से आगाही का फ़रीज़ा भी अंजाम दें।

सेहत-ए-फ़िक्र

एक साहब से मुलाक़ात हुई। उन्होंने गुफ़्तगू के दौरान कन्फ्यूज़न का ज़िक्र किया। मैंने कहा कि यह एक बेहद अहम मसला है। मेरा तजुर्बा है कि 99 फ़ीसद से ज़्यादा लोग कन्फ्यूज़्ड थिंकिंग

(confused thinking) में मुब्तला रहते हैं। इसके नतीजे में वह उस नेमत से महरूम हो जाते हैं जिसको राइट थिंकिंग (right thinking) कहा जाता है।

लोगों के अंदर सबसे ज़्यादा कमी यही है कि वह नहीं जानते कि सही तर्ज़-ए-फ़िक्र क्या है और ग़लत तर्ज़-ए-फ़िक्र क्या। इसी का यह नतीजा है कि आम तौर पर लोग शिकायत की नफ़्सियात में जीते हैं। वह अपनी ग़लत सोच और अपने ग़लत अमल की क़ीमत अदा करते हैं और समझते हैं कि दूसरे लोगों की साज़िश और ज़ुल्म की बुनियाद पर ऐसा हो रहा है। इसी बुनियाद पर लोगों का यह हाल है कि जहाँ चुप रहना चाहिए, वहाँ वह बोलते हैं। जहाँ इक़दाम न करना चाहिए, वहाँ वह छलांग लगा देते हैं। जहाँ एडजस्ट करना चाहिए, वहाँ वह लड़ने के लिए खड़े हो जाते हैं।

जिन लोगों से दोस्ताना ताल्लुक़ क़ायम करना चाहिए, उनको वह अपना दुश्मन समझ कर उनसे दूर हो जाते हैं। वह ख़ुद-साख़्ता तौर पर दूसरों को अपना "ग़ैर" समझ लेते हैं। हालाँकि इस दुनिया में हर शख़्स अपना है, कोई भी किसी के लिए ग़ैर नहीं। इसी बुनियाद पर लोग सब्र व तहम्मुल की अहमियत को नहीं समझते, हालाँकि इस दुनिया में कामयाबी का सबसे ज़्यादा कारगर फ़ॉर्मूला वही है जिसको सब्र व तहम्मुल कहा जाता है।

राइट थिंकिंग दरअसल सदाद-ए-फ़िक्र (sound thinking) का दूसरा नाम है। इंसान को चाहिए कि सबसे पहले वह आर्ट आफ़ थिंकिंग में महारत हासिल करे। इसके बग़ैर उसकी पूरी ज़िंदगी बे-मानी होकर रह जाएगी, फ़िक्री एतिबार से भी और अमली एतिबार से भी। इंसानी समाज में हर क़िस्म के बिगाड़ का ताल्लुक़ सोच से है। इस्लाह का राज़ यह है कि इंसानी सोच में तब्दीली लाई जाए। इंसानी सोच को बदले

बग़ैर कोई भी इस्लाह मुम्किन नहीं। इस हक़ीक़त को 'इंटेलेक्चुअल इंपावरमेंट' (intellectual empowerment) का नाम दिया जा सकता है। यानी लोगों को फ़िक्री ताक़त देना, उनके अंदर मामला-फ़हमी की सलाहियत पैदा करना, उनको इस क़ाबिल बनाना कि वह एक चीज़ और दूसरी चीज़ के फ़र्क़ को समझें, वह दुरुस्त मंसूबा-बंदी के साथ अपना काम करें।

इंसान के अंदर फ़िक्री इस्लाह का अमल मुसलसल और दुरुस्त अंदाज़ में क्यों जारी नहीं रहता। इसका सबब यह है कि इंसान मालूमात के जंगल के दरमियान ज़िंदगी गुज़ारता है। ज़रूरत है कि उसके अंदर वह फ़िक्री इस्तिदाद मौजूद हो जिसके ज़रिये वह मुतअल्लिक़ (relevant) और ग़ैर मुतअल्लिक़ (irrelevant) के फ़र्क़ को जाने। वह ग़ैर मुतअल्लिक़ बातों को छोड़ते हुए मुतअल्लिक़ बातों पर अपनी नज़र जमाए रहे। यही वह वाहिद आर्ट है जो इंसान के लिए सेहत-ए-फ़िक्र का ज़ामिन है।

नजात क्या है?

नजात के मामले में एक हदीस-ए-रसूल इन अल्फ़ाज़ में आई है:

عَنْ عُقْبَةَ بْنِ عَامِرٍ، قَالَ : قُلْتُ : يَا رَسُولَ اللهِ مَا النَّجَاةُ؟ قَالَ
:امْلِكْ عَلَيْكَ لِسَانَكَ، وَلْيَسَعْكَ بَيْتُكَ، وَابْكِ عَلَى خَطِيئَتِكَ

यानी अबू उमामा से रिवायत है, उक़्बा बिन आमिर ने रसूलुल्लाह ﷺ से पूछा, ऐ अल्लाह के रसूल, नजात क्या है। आपने जवाब दिया, अपनी ज़बान पर कंट्रोल करो, तुम्हारा घर तुम्हारे लिए काफ़ी हो, और

अपनी ग़लती पर रोओ। (सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2406) इस हदीस-ए-रसूल पर ग़ौर कीजिए। ब-ज़ाहिर इसमें तीन बातें कही गई हैं — अपनी ज़बान पर क़ाबू रखो, और दुनिया की तलब को आख़िरी हद तक कम करो, और ज़्यादा से ज़्यादा अपना एहतिसाब करो। इन तीनों बातों का ख़ुलासा करें तो यह होगा कि ज़्यादा से ज़्यादा अल्लाह को याद करो। यह तीनों सिफ़तें दरअसल अल्लाह की मारिफ़त का नतीजा हैं।

अल्लाह की मारिफ़त इंसान के लिए मास्टर स्ट्रोक (master stroke) की हैसियत रखती है। मास्टर स्ट्रोक कैरम (carrom) की इस्तिलाह है। मास्टर स्ट्रोक उस स्ट्रोक को कहते हैं, जो खेल के तमाम गोटों को हिला दे। इसी तरह मारिफ़त-ए-इलाही अगर इंसान के अंदर हक़ीक़ी तौर पर पैदा हो जाए तो उसकी पूरी शख़्सियत हिल जाएगी, वह हर एतिबार से अल्लाह के रंग में रंग जाएगा। (अल-बक़रह, 2:138) उसकी शख़्सियत पूरी तरह एक रब्बानी शख़्सियत बन जाएगी।

तंगी का जीना

क़ुरआन की चंद आयतें यह हैं:

وَمَنْ أَعْرَضَ عَنْ ذِكْرِي فَإِنَّ لَهُ مَعِيشَةً ضَنْكاً وَنَحْشُرُهُ يَوْمَ الْقِيامَةِ أَعْمى۔ قالَ رَبِّ لِمَ حَشَرْتَنِي أَعْمى وَقَدْ كُنْتُ بَصِيراً ۔قالَ كَذلِكَ أَتَتْكَ آياتُنا فَنَسِيتَها وَكَذلِكَ الْيَوْمَ تُنْسى

यानी, जो शख़्स मेरे ज़िक्र से मुँह मोड़ेगा तो उसके लिए तंगी का जीना होगा। और क़ियामत के दिन हम उसको अंधा उठाएँगे। वह कहेगा कि ऐ मेरे रब, तूने मुझको अंधा क्यों उठाया, इर्शाद होगा कि इसी तरह

तुम्हारे पास हमारी निशानियाँ आईं तो तुमने उनको भुला दिया, तो इस तरह आज तुमको भुला दिया जाएगा। (20:124-126)

क़ुरआन की इस आयत में "ज़िक्र से मुँह मोड़ने" का मतलब वही है जिसको आगे "आयात यानी निशानियों से एराज़" के अल्फ़ाज़ में बयान किया। दुनिया की ज़िंदगी में इंसान के सामने हर वक़्त तरह-तरह की निशानियाँ आती रहती हैं। यह निशानियाँ इसलिए आती हैं, ताकि इंसान उनपर सोचे और उनसे नसीहत हासिल करे। यह सोचना और नसीहत हासिल करना वह चीज़ है जिससे आदमी को सच्चाई की मारिफ़त हासिल होती है, जिससे आदमी अपनी ज़िंदगी की मानविय्यत समझता है और अपने क़ौल व अमल के बारे में दुरुस्त तरीक़ा इख़्तियार करता है। मगर जब आदमी ज़िक्र से एराज़ करे तो वह दुरुस्त रवैया इख़्तियार करने से महरूम रह जाएगा।

"मईशतन ज़नकन" (तंगी भरी ज़िंदगी) से मुराद रिज़्क़ की तंगी नहीं है, बल्कि फ़िक्र की तंगी है। यानी वह सूरत-ए-हाल जब कि आदमी का ज़ेहन खुला हुआ न हो, वह तअस्सुब और तंग-नज़री जैसी मनफ़ी सिफ़ात का शिकार हो। ऐसा आदमी ज़ेहनी फ़ाक़ा (intellectual starvation) में मुब्तला रहेगा। वह चीज़ों को देखेगा, मगर वह उससे नसीहत न ले सकेगा। वह बातों को सुनेगा, लेकिन उससे वह कोई रूहानी ग़िज़ा हासिल न कर सकेगा। उसको तजुर्बात पेश आएँगे, लेकिन तजुर्बात को एक गहरी नज़र रखने वाले (अल-हिज्र 15:75) की नज़र से देखना उसके लिए मुमकिन न होगा, वग़ैरह। यही मतलब है इस आयत में "मईशत-ए-ज़नक" का।

मुस्तक़बिल की तरफ़

क़ुरआन की सूरह अल-बक़रह में बताया गया है कि इस दुनिया में हर फ़र्द और हर गिरोह को लाज़िमन कोई न कोई नुक़सान पेश आता है(2:155)। इस हालत में इंसान को क्या करना चाहिए। यह रहनुमाई अगली आयत में इन अल्फ़ाज़ में बयान की गई है:

الَّذِينَ إِذا أَصابَتْهُمْ مُصِيبَةٌ قالُوا إِنَّا لِلهِ وَإِنَّا إِلَيْهِ راجِعُونَ

यानी, जिनका हाल यह है कि जब उनको कोई मुसीबत पहुँचती है तो वह कहते हैं हम अल्लाह के हैं और हम उसी की तरफ़ लौटने वाले हैं।(2:156) दूसरे अल्फ़ाज़ में इसका मतलब यह है कि अपने नुक़सान को ख़ुदा के हवाले करके अपने मुस्तक़बिल के लिए हक़ीक़त-पसंदाना बुनियाद पर अज़सर-ए-नौ प्लैनिंग की जाए। यही सुन्नत-ए-रसूल है और यही फ़ितरत का क़ानून भी।

नुबुव्वत के तेरहवें साल रसूलुल्लाह ﷺ को अहल-ए-मक्का के ज़ुल्म की बुनियाद पर मक्का को छोड़ना पड़ा। आपने अहल-ए-मक्का के ज़ुल्म को भुला कर मदीना में अपने मिशन की नई मंसूबा-बंदी की। ग़ज़वा-ए-उहुद (3 हि०) में 70 सहाबा शहीद हुए और बहुत से लोग ज़ख़्मी हुए। आपने दोबारा यही किया कि इस हादसे को भुला कर अपने पैग़म्बराना मिशन की नई तंज़ीम की, वग़ैरह।

यह पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ की एक अज़ीम सुन्नत है। तमाम मुसलमानों पर फ़र्ज़ है कि वह इस सुन्नत-ए-रसूल को दिल से क़बूल करें और उसके मुताबिक़ अपने अमल का मंसूबा बनाएँ। मौजूदा ज़माने में मुसलमानों के साथ हर जगह इस क़िस्म के नुक़सानात पेश आ रहे हैं। मगर मुसलमानों का हाल यह है कि वह इस सुन्नत-

ए-रसूल को भुलाए हुए हैं। वह माज़ी की शिकायतों में जी रहे हैं और मुस्तक़बिल के लिए नई मंसूबा-बंदी से ग़ाफ़िल हैं। यह तरीक़ा सरासर ग़ैर-इस्लामी तरीक़ा है। यह तरीक़ा मुसलमानों को हरगिज़ कोई फ़ायदा देने वाला नहीं। वह सिर्फ़ उनके नुक़सान में मज़ीद इज़ाफ़े का सबब बनता रहेगा।

इस मामले में मुसलमानों के लिए एक ही रास्ता है। यह कि वह अपनी इस मनफ़ी (negative) रविश को बदल लें और मुसबत (positive) सोच के साथ अपने अमल की नई मंसूबा-बंदी करें। इस अमल में ताख़ीर नुक़सानो में मज़ीद इज़ाफ़े के सिवा मुसलमानों को कुछ और देने वाला नहीं। माज़ी की तल्ख़ यादों को भुलाना ही इस मसले का हल है। इस हिकमत को क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है:

لِكَيْلَا تَأْسَوْا عَلَى مَا فَاتَكُمْ

“ताकि तुम उस पर ग़म न करो जो तुमसे खोया गया है।” (57:23)

साज़िश बेअसर

साज़िश अपने इबतिदाई मरहले में एक निष्क्रिय सोच (passive thought) होती है। लेकिन जब आप उसके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई करके उसको इश्तेआल के दर्जे में पहुँचा दें तो उस वक़्त वह सक्रिय सोच (active thought) बन जाती है। साज़िश इबतिदाई तौर पर कोई ख़तरनाक बात नहीं होती, लेकिन जब नादानी का तरीक़ा इख़्तियार करके भड़काव की हालत तक पहुँचा दिया जाए तो उसके बाद साज़िश आपके लिए मसला बन जाती है। अगर आप अपनी

तरफ़ से साज़िश के लिए जवाज़ (justification) फ़राहम न करें तो साज़िश पूरी तरह बेअसर बनकर रह जाएगी।

इसी लिए क़ुरआन में आया है:

وَإِنْ تَصْبِرُوا وَتَتَّقُوا لا يَضُرُّكُمْ كَيْدُهُمْ شَيْئاً

यानी, अगर तुम सब्र करो और अल्लाह से डरो तो उनकी कोई तदबीर तुमको नुक़सान न पहुँचा सकेगी। (3:120)

साज़िश इबतिदाई तौर पर एक कमज़ोर फ़ेल है। उसका सबब यह है कि साज़िश हमेशा दो तरफ़ा बुनियाद पर चलती है। यक तरफ़ा बुनियाद पर साज़िश का चलना मुमकिन नहीं। इसका मतलब यह है कि एक शख़्स आपके ख़िलाफ़ साज़िश की बात सोच सकता है, लेकिन साज़िश को चलाने के लिए ज़रूरी है कि आप उसके जवाब में रद्द-ए-अमल (reaction) का कोई फ़ेल न करें। जब आप ऐसा करें तो साज़िश करने वाले को बहाना मिल जाता है कि वह अपनी साज़िश को आगे बढ़ाए, और उसको आपके ख़िलाफ़ एक असरदार अमल बना दे।

मसलन कुछ लोगों ने यह साज़िश की कि आपके ऊपर कीचड़ फेंके। ताकि आप ग़ुस्सा होकर उसको पत्थर मारें। उसके बाद उसको मौक़ा मिल जाए कि वह मज़ीद कार्रवाई करके आपके ख़िलाफ़ लोगों को भड़काए, और आपके ख़िलाफ़ एक फ़िज़ा क़ायम हो जाए।

साज़िश का तरीक़ा हमेशा यही होता है। साज़िश करने वाला इसलिए साज़िश करता है कि आप भड़क कर कोई ऐसा फ़ेल करें, जिसके बाद साज़िश करने वाले को आपके ख़िलाफ़ मज़ीद तख़रीबी कार्रवाई करने का मौक़ा मिल जाए। साज़िश का आग़ाज़ दूसरे के हाथ में होता है, लेकिन साज़िश को अंजाम तक पहुँचाना पूरी तरह आपके रद्द-ए-अमल पर मौक़ूफ़ है।

सब्र क्या है?

सब्र इबतिदाई तौर पर इस बात का नाम है कि कोई नाख़ुशगवार सूरत-ए-हाल पेश आए तो आदमी बर्दाशत कर ले। रोने-पीटने और शोर मचाने के बजाय वह सब्र का तरीक़ा इख़्तियार करे। सब्र यह है कि आदमी अपने आपको रिएक्शन से बचाए। और नाख़ुशगवार सूरत-ए-हाल को अंदर ही अंदर सह ले। सब्र को उसके पूरे मफ़हूम में समझा जाए तो वह पीसफ़ुल प्लैनिंग (peaceful planning) का नाम है। बेसब्री यह है कि आदमी रिएक्शन का तरीक़ा इख़्तियार करे, और सब्र यह है कि आदमी अपने आपको आख़िरी हद तक रिएक्शन से बचाए। बल्कि ख़ामोश अंदाज़ से पुर-अम्न तदबीर के ज़रिए मसले को हल करने की कोशिश करे।

सब्र का मामला इज्तिमाई ज़िंदगी में जब भी पेश आए, उसका मतलब यह होता है कि टकराव से बचा जाए , और वक़्ती तौर पर कोई तकलीफ़ पेश आए तो उसको बर्दाशत का तरीक़ा इख़्तियार करते हुए आदमी मामले पर ग़ौर-ओ-फ़िक्र करे। फिर ग़ैर-जज़्बाती अंदाज़ में ख़ामोश प्लैनिंग के ज़रिए मामले को हल करने की कोशिश की जाए।

पैग़म्बर-ए-इस्लाम की पूरी ज़िंदगी इस तरीक़-ए-कार की अमली मिसाल है। आपका ज़माना क़बाइली दौर (tribal age) था। उस ज़माने में लोगों को मसाइल का एक ही हल मालूम था। वह था ब-ज़रीआ “तलवार” मसले को हल करने की कोशिश करना।

इसके बरअक्स, पैग़म्बर इस्लाम ने हमेशा इख़्तिलाफ़ी मामलात में तहम्मुल का तरीक़ा इख़्तियार किया, और पीस फ़ुल प्लैनिंग के ज़रिए मसले को हल करने की कोशिश की। आपकी पूरी ज़िंदगी, ख़्वाह मक्की दौर हो या मदनी दौर, इसी दानिशमंदाना तरीक़-ए-कार की कामयाब मिसाल है।

मसलन सुल्ह हुदैबिया के मौक़े पर अहल-ए-मक्का ने आपको भड़काने का हर मुमकिन तरीक़ा इख़्तियार किया था। मगर रसूलुल्लाह ﷺ ने मुकम्मल तौर पर एराज़ का तरीक़ा इख़्तियार किया। उसका ज़िक्र क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में आया है: जब इनकार करने वालों ने अपने दिलों में हमीयत पैदा की, जाहिलियत की हमीयत, फिर अल्लाह ने अपनी तरफ़ से सक़ीनत नाज़िल फ़रमाई अपने रसूल पर और ईमान वालों पर, और अल्लाह ने उनको तक़्वा की बात पर जमाए रखा और वो उसके ज़्यादा हक़दार और इसके अहल थे। (48:26) इस ना-ख़ुशगवार मौक़े पर आपने यकतरफ़ा तौर पर सब्र का तरीक़ा इख़्तियार किया। चुनाँचे उसका नतीजा फ़त्ह-ए-मुबीन की शक्ल में बरामद हुआ। (अल-फ़त्ह, 48:1)

शॉक ट्रीटमेंट

क़ुरआन की एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है:

إِذْ تُصْعِدُونَ وَلَا تَلْوُونَ عَلَى أَحَدٍ وَالرَّسُولُ يَدْعُوكُمْ
فِي أُخْرَاكُمْ فَأَثَابَكُمْ غَمًّا بِغَمٍّ لِكَيْلَا تَحْزَنُوا عَلَى مَا
فَاتَكُمْ وَلَا مَا أَصَابَكُمْ وَاللهُ خَبِيرٌ بِمَا تَعْمَلُونَ

यानी, जब तुम लोग भागे जा रहे थे और मुड़कर भी किसी को न देखते थे, और रसूल तुमको तुम्हारे पीछे से पुकार रहा था। फिर अल्लाह ने तुमको ग़म पर ग़म दिया ताकि तुम रंज़ीदा न हो उस चीज़ पर जो तुम्हारे हाथ से चूक गई और न उस मुसीबत पर जो तुम पर पड़े। और अल्लाह ख़बर रखने वाला है जो कुछ तुम करते हो। (3:153)

यह आयत ग़ज़वा-ए-उहुद (3 हि०) से ताल्लुक़ रखती है। अहल-ए-ईमान को इस जंग में ग़म का शदीद तजुर्बा हुआ। उस वक़्त यह तालीम दी गई कि जब तुम्हारे साथ ग़म का वाक़िया पेश आए और तुमको किसी चीज़ के खोने का तजुर्बा हो तो तुम उस पर रंज़ और अफ़सोस न करो। अपनी हक़ीक़त के एतिबार से यह सब्र की तालीम है।

उस वक़्त पैग़म्बर मौजूद था, और क़ुरआन उतर रहा था, तो लफ़्ज़ी तालीम काफ़ी थी, फिर ग़म का वाक़िया क्यों पेश आया।उसका सबब यह है कि खोए जाने पर ग़म न करना, यह कोई सादा बात नहीं है। खोए जाने पर ग़म न करना उस वक़्त होता है, जब कि आदमी पर ऐसे सख़्त तजुर्बात गुज़रें, जो उसकी कंडीशनिंग को तोड़ कर उसके अंदर डी-कंडीशंड ज़ेहन (deconditioned mind) पैदा कर दें।कंडीशनिंग से ख़ाली आदमी ही यह कर सकता है कि उसको माद्दी क़िस्म का सदमा पेश आए, लेकिन वह ग़ैर-मुतअस्सिर सोच पर क़ायम रहे।

यह सिफ़त एक तरबियत-याफ़्ता ज़ेहन का ज़ाहिरा है, और तरबियत-याफ़्ता ज़ेहन सिर्फ़ तजुर्बात के कोर्स से गुज़रने के बाद तैयार होता है। ग़म के वाक़िया पर हज़्न और मायूसी का पैदा न होना एक तरबियत-याफ़्ता इंसान की ख़ुसूसियत है। अगर इस बात की सिर्फ़ लफ़्ज़ी तालीम दी जाए तो तरबियत का फ़ायदा हासिल नहीं होगा, इसलिए इंसान को सदमा (shock treatment) के कोर्स से गुज़ारा जाता है, ताकि उसकी डी-कंडीशनिंग हो, और नफ़्सियाती एतिबार से वह आला सिफ़त का हामिल बन सके।

सच्चा शुक्र

इंसान के लिए सबसे मुश्किल चीज़ एतिराफ़ (स्वीकार करना) है। एतिराफ़ की हक़ीक़त शुक्र-गुज़ारी है। यानी दूसरे इंसान से जो चीज़ हासिल हुई है, उसका एतिराफ़ करना। इंसान हर मिली हुई चीज़ को अपनी कोशिश का नतीजा समझता है, इसलिए वह दूसरे का एतिराफ़ नहीं करता। यही वजह है कि दुनिया में सबसे ज़्यादा जो चीज़ पाई जाती है, वह दूसरों को मान्यता न देना है, और सबसे कम जो चीज़ पाई जाती है, वह दूसरों का एतिराफ़ है, यानी शुक्र और नाशुक्री।

इंसान का फ़ख़्र , उसके लिए रूकावट बन जाता है कि वह दूसरे का एतिराफ़ करे। यही वजह है कि जिसको देखिए, वह नाशुक्री की बोली बोलता है। शुक्र की बोली बोलने वाला मुश्किल से कोई दुनिया में मिलेगा।

हक़ीक़त यह है कि सच्चा शुक्र हमेशा अपनी नफ़ी की क़ीमत पर अदा होता है। चूँकि बेश्तर लोग अपनी नफ़ी की क़ीमत देने के लिए तैयार नहीं होते, इसलिए वह शुक्र या एतिराफ़ भी नहीं कर पाते। जब आप किसी का एतिराफ़ करते हैं, तो उसका मतलब यह होता है कि आप एक मिली हुई चीज़ का क्रेडिट दूसरे शख़्स को देते हैं।

आज आप लोगों का सर्वे करें, तो आप पाएँगे कि हर आदमी शिकायत की बोली बोलता है। मैंने ज़ाती तौर पर बार-बार इस हक़ीक़त का तजुर्बा किया है। मसलन कई बार मैंने जलसा-ए-आम में लोगों से पूछा कि आपकी मआशी ज़िंदगी कल कैसी थी, और आज कैसी है। तक़रीबन हर एक ने बताया कि उसकी मआशी ज़िंदगी पहले के मुक़ाबले में आज बहुत बेहतर है। मगर इससे समाज की आम हालत पर गुफ़्तगू करें, तो वह शिकायत करेगा, वह शुक्र की बोली नहीं बोलेगा।

मसलन दिल्ली में एक साहब मेरे ऑफ़िस में आए। वह नई कार पर बैठ कर आए थे। हमारे ऑफ़िस में आते ही वह शिकायत की बोली बोलने लगे। मैंने जब उनके ज़ाती हालात पूछे, तो हर बात पर वह अल्हम्दुलिल्लाह कहते थे। गोया अपनी ज़ात के लिए उनकी ज़िंदगी अल्हम्दुलिल्लाह थी, और दूसरों के लिए उनके पास शिकायत के सिवा और कुछ न था। हक़ीक़ी ज़िंदगी वही है, जो फ़र्द अपनी सतह पर तजुर्बा करता है, न कि वह जो इंसान किसी से सुनता है।

शुक्र का एक आइटम

साईंसी मुताले के मुताबिक़, तक़रीबन 13.8 बिलियन साल पहले बिग बैंग (Big Bang) के ज़रिये मौजूदा दुनिया की तारीख़ का आग़ाज़ हुआ। यह सितारों और कहकशाओं से भरी हुई एक वसीअ काइनात थी। इस काइनात में 'मिल्की वे' के अंदर वह दुनिया थी, जिसको हम शमसी निज़ाम (Solar system) के नाम से जानते हैं। इसी शमसी निज़ाम के एक सय्यारा प्लैनेट अर्थ पर इंसान आबाद है। यह एक पूरी तरह कस्टम मेड वर्ल्ड है। इसी बिना पर यह मुमकिन हुआ कि इंसान इस ज़मीन पर ब-सहूलत आबाद हो, और यहाँ आज़ादी के साथ अपनी एक तहज़ीब (civilization) बनाए।

इस क़िस्म की मालूमात इंसान को साइंसी दौर से पहले नहीं थी। दूरबीन, ख़ुर्दबीन और दूसरी इजादात ने इंसान को वहाँ तक पहुँचा दिया, जहाँ इंसान इससे पहले कभी नहीं पहुँचा था। पहले तो इंसान अल्लाह रब्बुल-आलमीन को मानता था, लेकिन उसका यह इल्म मबनी बर हक़ाइक़ नहीं था, बल्कि मबनी बर अक़ीदा था।

यह अल्लाह का इंसान के ऊपर बहुत बड़ा एहसान है कि उसको अल्लाह ने रियाज़ियाती हिसाब-किताब (mathematical calculation) की सलाहियत दी।

अल्लाह ने आज के इंसान को यह सलाहियत अता की कि वह मौजूदात को वहाँ तक देखे, जहाँ तक इससे पहले इंसान ने कभी देखा नहीं था। उसकी पहुँच आलम-ए-कबीर (macro world) से लेकर आलम-ए-सगीर (micro world) तक हो गई। इस तरह यह मुमकिन हो गया कि इंसान अल्लाह की ज़ात पर मज़ीद गहराई के साथ यक़ीन कर सके। इंसान बहुत ज़्यादा शुक्र की ज़िंदगी गुज़ारे।

क़ुरआन में पैग़म्बर मूसा की एक दुआ बयान की गई है। इस दुआ का एक जुज़ यह है:

كَيْ نُسَبِّحَكَ كَثِيرًا ـ وَنَذْكُرَكَ كَثِيرًا

ताकि हम दोनों कसरत से तेरी पाकी बयान करें। और कसरत से तेरा चर्चा करें।(20:33-34) मौजूदा दौर में साइंसी दरियाफ़्तों के ज़रिये ज़ाहिर होने वाली ख़ुदाई निशानियाँ इस दुआ को पहले से कहीं ज़्यादा वसीअ पैमाने पर मुमकिन बना रही हैं। यह बिला-शुब्हा इंसान के ऊपर अल्लाह का बहुत बड़ा इनाम है।

फ़ख्र की ख़ुराक

बीसवीं सदी के एक मशहूर मुस्लिम शायर का शेर है:

उठ कि अब बज़्म-ए-जहाँ का और ही अंदाज़ है

मशरिक़-ओ-मग़रिब में तेरे दौर का आग़ाज़ है

इस शेर के पहले मिसरे में जो बात कही गई है, उसका तक़ाज़ा था कि शायर यह कहता कि अब दुनिया के हालात बदल गए हैं। अब तुम इन तब्दीलियों से बाख़बर हो जाओ, और अपने अमल की मंसूबा-बंदी नए दौर के मुताबिक़ करो। वरना तुम आज की दुनिया में बे-जगह (misfit) हो जाओगे। मगर शायर ने इसके बर-अक्स एक ऐसी बात कह दी जिससे मुसलमानों को सिर्फ़ फ़र्ज़ी फ़ख्र (false pride) की ख़ुराक मिलेगी। और किसी क़ौम के लिए फ़र्ज़ी फ़ख्र से ज़्यादा तबाह-कुन कोई दूसरी चीज़ नहीं।

बीसवीं सदी में प्रिंटिंग प्रेस आया और आज़ादी का माहौल क़ायम हुआ। इन हालात में मुसलमानों के अंदर इस्लाम के नाम पर बड़ी-बड़ी तहरीकें उठीं। इन तमाम तहरीकों का मुश्तरक पहलू यह था कि हर एक ने किसी न किसी एतिबार से मुसलमानों को फ़ख्र की ग़िज़ा दी—हमारा दीन सबसे अफ़ज़ल, हमारा नबी सबसे अफ़ज़ल, हमारा क़ुरआन सबसे अफ़ज़ल, हमारी उम्मत सबसे अफ़ज़ल, हमारी तारीख़ सबसे अफ़ज़ल, हमारा कल्चर सबसे अफ़ज़ल, वग़ैरह। यही बीसवीं सदी की तमाम मुस्लिम तहरीकों का मुश्तरक ख़ुलासा था। मज़हबी रहनुमा और सेक्युलर रहनुमा दोनों यकसाँ तौर पर इसमें शरीक थे। इसका नतीजा यह हुआ कि पूरी मुस्लिम उम्मत, अरब से अजम तक, फ़ख्र-पसंदी के ज़ेहन में मुबतला हो गई।

फ़ख्र कोई सादा बात नहीं। फ़ख्र से बरतरी का एहसास पैदा होता है। और बरतरी से किब्र (arrogance) का मिज़ाज पैदा होता है। किब्र तमाम आला इंसानी औसाफ़ का क़ातिल है। किब्र का नतीजा यह होता है कि आदमी के अंदर दूसरों के लिए ख़ैरख़्वाही का जज़्बा ख़त्म हो जाता है। इसी तरह घमंड से सीखने का जज़्बा ख़त्म हो जाता है। किब्र से एडजस्टमेंट का जज़्बा ख़त्म हो जाता है। किब्र से हक़ीक़त-पसंदी का जज़्बा ख़त्म हो जाता है, वग़ैरह। किब्र हर क़िस्म की मुस्बत

सिफ़ात का क़ातिल है। और जिस फ़र्द या क़ौम के अंदर मुस्बत सिफ़ात न हों, वह दुनिया के एतिबार से भी नाकाम है और आख़िरत के एतिबार से भी नाकाम।

शादी-शुदा ज़िंदगी

निकाह नाम है, ग़ैर-आइडियल ज़ौज (spouse) को रज़ामंदी के साथ क़बूल करने का। इसलिए बिलफ़र्ज़ अगर आपको अपनी पसंद का ज़ौज मिल जाए, तब भी वह आपके लिए किसी आला दुआ का पॉइंट ऑफ़ रेफरेंस नहीं बनेगा। आप दोनों मिलकर हू-हा (hu ha) करेंगे, यानी हँसी-मज़ाक। न आप कुछ सीखेंगे और न आपका ज़ौज कुछ सीखेगा। न आपके दिल से कोई बड़ी दुआ निकलेगी और न आपके ज़ौज के दिल से कोई बड़ी दुआ निकलेगी।

इसके बरअक्स, जब आप यह जानें कि दुनिया में अल्लाह ने किसी के लिए पसंदीदा ज़ौज पैदा ही नहीं किया। यह दुनिया महदूदियत (limitation) के उसूल पर बनी है। मसलन यहाँ हर दो इंसानों के दरमियान इख़्तिलाफ़ात (differences) हैं और रहेंगे। इसलिए शादी-शुदा ज़िंदगी नाम है इख़्तिलाफ़ के बावजूद किसी को अपना साथी बनाने का, ग़ैर-आइडियल होने के बावजूद किसी को पसंद करने का।

अक्सर लोग फ़ितरत के इस राज़ को नहीं जानते। इसलिए वह पसंदीदा ज़ौज की तलाश में रहते हैं। और फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़ इस दुनिया में किसी के लिए यह मुमकिन नहीं है कि वह अपनी पसंद का ज़ौज हासिल कर ले। हर एक के अंदर कोई न कोई कमी यक़ीनन रहेगी।

फ़ितरत के निज़ाम के मुताबिक़ जब आपका विवाह ऐसे जीवनसाथी से हो जाए जो आपको पसंद न हो, तो वह आपकी दुआ के लिए एक आला दर्जे का पॉइंट ऑफ़ रेफरेंस बन जाएगा। आप कहेंगे कि ख़ुदाया, दुनिया की ज़िंदगी समाजी ताल्लुक़ात की बुनियाद पर क़ायम होती है। दुनिया में मैंने फ़ितरत के निज़ाम के मुताबिक़ एक ज़ौज को अपने लिए क़बूल कर लिया। अब मेरी दुआ है कि तू आख़िरत में मेरे साथ पैग़म्बर की दुआ के मुताबिक़ वह मामला कर जो क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में मज़कूर है:

رَبِّ إِنِّي لِمَا أَنْزَلْتَ إِلَيَّ مِنْ خَيْرٍ فَقِيرٌ

"ऐ मेरे रब, तू जो चीज़ मेरी तरफ़ ख़ैर में से उतारे, मैं उसका मुहताज हूँ।" (28:24)

जिस इंसान के लिए उसकी शादी इस क़िस्म की दुआ के लिए पॉइंट ऑफ़ रेफरेंस बन जाए, उसी की शादी, शादी है। इसके अलावा शादी की जो क़िस्में हैं, ऐसी शादी अपनी नौइयत के एतिबार से हैवानी ताल्लुक़ात का मामला है—यानी हैवान की तरह ज़िंदगी गुज़ारना और इस दुनिया से अपना मक़सद-ए-हयात जाने बग़ैर चले जाना।

दुनिया की शादी आख़िरत के अच्छे साथ के लिए तरबियत का अहम ज़रिया है। शादी का मामला अबदी रिफ़ाक़त का मामला है। इसका एक बुनियादी मक़सद यह है कि जन्नत की दाइमी रिफ़ाक़त (स्थायी साथ) के लिए तरबियत-याफ़्ता मर्द और औरत तैयार किए जाएँ। गोया दुनिया की ज़िंदगी आख़िरत की शादी-शुदा ज़िंदगी के लिए तरबियतगाह है।

शादी-शुदा ज़िंदगी का असल मयार यह है कि आप ऐसे इंसान बन जाएँ जो आख़िरत के तक़ाज़ों पर पूरा उतरें। जो शादी आख़िरत की ज़िंदगी के लिए तरबियती हैसियत इख़्तियार कर ले, वही दरहक़ीक़त कामयाब शादी है। और जिस शादी में यह मक़सद हासिल न हो, वह

शादी कामयाब नहीं कही जा सकती। दुनिया की शादी महज़ लज़्ज़त या ऐश के लिए नहीं, बल्कि वह तरबियत के लिए है।

मोमिन का हथियार

एक हदीस-ए-रसूल इन अल्फ़ाज़ में आई है:

أَلَا أَدُلُّكُمْ عَلَى مَا يُنْجِيكُمْ مِنْ عَدُوِّكُمْ وَيَدِرُّ لَكُمْ أَرْزَاقَكُمْ
تَدْعُونَ اللهَ فِي لَيْلِكُمْ وَنَهَارِكُمْ، فَإِنَّ الدُّعَاءَ سِلَاحُ الْمُؤْمِنِ

यानी, क्या मैं तुम्हें वह रहनुमाई न बताऊँ जो तुमको तुम्हारे दुश्मनों से नजात दे और तुम्हारी रोज़ी में इज़ाफ़ा कर दे? तुम अल्लाह से अपने रात और दिन में दुआ करो, क्योंकि दुआ मोमिन का हथियार है।

(मुसनद अबी यअला, हदीस नंबर 1812)

एक और रिवायत में ये अल्फ़ाज़ हैं:

عَنْ عَلِيٍّ رَضِيَ اللهُ عَنْهُ، قَالَ : قَالَ رَسُولُ اللهِ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ
الدُّعَاءُ سِلَاحُ الْمُؤْمِنِ، وَعِمَادُ الدِّينِ، وَنُورُ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ:

अली इब्न अबी तालिब कहते हैं कि रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने कहा: दुआ मोमिन का हथियार है, दीन का सतून है, और आसमानों और ज़मीन का नूर है। (मुस्तद्रक अल-हाकिम, हo नo 1812)।

इस हदीस का मतलब ये नहीं है कि मोमिन जब दुआ करे तो उसके दुश्मन हलाक हो जाएंगे। बल्कि ये नफ़्सियाती मानी में है। दुआ एक मोमिन के लिए तस्कीन (solace) का एक अज़ीम ज़रिया है — यानी एक बेबस और मोहताज का अपने आपको एक सर्वशक्तिमान ख़ुदा के हवाले कर देना, और उसे अपना सहारा बना लेना।

ग़लत निशाने का मसला

कहा जाता है कि आज की दुनिया में हर जगह इस्लाम और मुसलमानों के हक़ में हालात साज़गार नहीं हैं, ख़्वाह अमरीका हो या यूरोप, एशिया हो या अफ़्रीका — ये बिला-शुब्हा एक ग़लत अंदाज़ा है।ये ग़लत अंदाज़ा इसलिए पैदा हुआ है कि उम्मत-ए-मुस्लिमा का निशाना ये समझ लिया गया कि सारी दुनिया में इस्लाम का सियासी ग़लबा क़ायम किया जाए। ये ग़लत निशाना है, और इसी ग़लत निशाने की वजह से मुसलमान हर मुल्क में अजनबी की तरह हो गए हैं। इस ग़लत निशाने को एक लफ़्ज़ में सियासी निशाना कह सकते हैं।

निशाने अमली तौर पर दो क़िस्म के होते हैं। एक है, मौजूद सिस्टम को बदलना (to bring about change in the existing system)। इसके मुक़ाबले में दूसरा निशाना है, पुर-अम्न अंदाज़ में लोगों को ख़ुदा के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ से बाख़बर करना।

अगर सिस्टम बदलने को निशाना बनाया जाए तो उससे एक फ़रीक़ और दूसरा फ़रीक़, एक दूसरे के हरीफ़ बन जाते हैं, और उसका लाज़िमी नतीजा टकराव की सूरत में निकलता है — यानी किसी क़ाबिज़ ताक़त से टकराना। इस क़िस्म का टकराव लाज़िमी तौर पर रिएक्शन(reaction) पैदा करता है, और फिर रिएक्शन, चेन रिएक्शन (chain reaction) में तब्दील हो जाता है।

इस तरह कोई नज़रिया जो सिस्टम को बदलने या किसी ताक़त से मुज़ाहमत पर मबनी हो, वो हमेशा बएतिबार-ए-नतीजा टकराव की सूरत इख़्तियार कर लेगा। यही वो टकराव है, जो अपने नतीजे के एतिबार से शिकायत, मनफ़ी सोच और तशद्दुद की सूरत में बरामद होता है।

इसके बरअक्स, इंसानों को ख़ुदाई पैग़ाम से बाख़बर करने का अमल मुकम्मल तौर पर एक पुर-अम्न और बे-मसला काम है। क्योंकि ये फ़िक्री तबादला की नौइयत का एक काम है।स अमल के नतीजे में जो मुसबत असरात पैदा होते हैं, वो हैं: रवादारी, अम्न, बाहमी ख़ैरख़्वाही, पुर-अम्न डिस्कशन, और ग़लतफ़हमी व अजनबियत का ख़ातिमा।

ये एक ऐसा काम है जो अपने आग़ाज़ में भी पुर-अम्न है, और अपने अंजाम में भी पुर-अम्न। इसके ज़रिये कशिदगी का माहौल ख़त्म होता है, और पुर-अम्न ताल्लुक़ात को फ़रोग़ हासिल होता है। ये हर फ़र्द के लिए ख़ुशगवार तजुर्बा है।इसके बरअक्स, इंसानी तारीख़ का मुशाहिदा है कि जब भी सिस्टम में तब्दीली को निशाना बनाया गया तो उसके असरात पूरे मुआशरे पर मुरत्तब हुए, और हर फ़र्द को मसाइल का सामना करना पड़ा।

सच्चाई की दरियाफ़्त

4 जून 2019 को मैंने एक ख़्वाब देखा। इस ख़्वाब में मैंने देखा कि मैं मौलाना निज़ामुद्दीन इस्लाही आज़मी से बात कर रहा हूँ। उनका तालीमी ज़ेहन पहले फ़राही स्कूल में बना। उसके बाद वो इस्लाम की सियासी ताबीर से मुतास्सिर हुए। इन दो तहरीकों के दरमियान उनका फ़िक्री ढाँचा बना। गुफ़्तगू में उनकी बात मुझे याद नहीं। मगर मैंने उनसे जो कहा वो ये था कि पिछले हज़ारों साल के दरमियान इंसान की कोशिशों से अफ़्कार का एक जंगल तैयार हो गया। आज जो इंसान पैदा होता है वो अफ़्कार के इस जंगल के दरमियान पैदा होता है।

सच्चाई अगरचे ब-ज़ात-ए-ख़ुद एक महफ़ूज़ हक़ीक़त है, लेकिन वो अफ़कार के जंगल में अजनबी हो चुकी है। यहाँ तक कि अफ़कार की कसरत ने फ़ित्ना-ए-दुहैमा यानी मुकम्मल फ़िक्री कन्फ्यूज़न (utter intellectual confusion) की सूरत इख़्तियार कर ली है।

अब सच्चाई को पाने के लिए न कलाम-ए-अरब की महारत काफ़ी है, और न किताबख़ाने में मौजूद रवायती किताबों का मुताला। बल्कि इंसान को अपनी तलाश का आग़ाज़ "ग़ार-ए-हिरा" से करना है — दूसरे लफ़्ज़ों में ये कि कामिल मानी में अपने आप को हक़ का तालिब (truth seeker) बनाना है।

मौजूदा ज़माने में साइंटिफिक टेमपर या ऐज़ इट इज़ थिंकिंग (as it is thinking) हक़ के मुसाफ़िर के लिए ताइदी इल्म (supporting knowledge) की हैसियत रखता है।हदीस में इसको أَرِنَا الْأَشْيَاءَ كَمَا هِيَ (तफ़्सीर अल-राज़ी, जिल्द 1, सफ़्हा 119) के अल्फ़ाज़ से ताबीर किया गया है — यानी चीज़ों को वैसा ही देखना जैसा कि फ़िल-वाक़े वो हैं।आदमी जब तक अफ़कार के जंगल से निकल कर ऐज़ इट इज इज़ थिंकिंग की सलाहीयत पैदा ने करे, वे सच्चाई की दरियाफ़्त तक नहीं पहुँच सकता।

ऐज़ इट इज़ थिंकिंग नाम है मबनी-बर-हक़ीक़त सोच का, जो मुकम्मल डी कंडीशनिंग के बाद आदमी के अंदर पैदा होती है। ये बिला-शुब्हा एक मुश्किल काम है।डी कंडीशनिंग हर इंसान की एक लाज़िमी ज़रूरत है। इसके बिना इंसान की शख़्सियत एक नाक़िस शख़्सियत बनी रहेगी, वो कभी कामिल शख़्सियत का दर्जा न पा सकेगी।

कामयाबी का उसूल

अमरीका के डॉक्टर माइकल हार्ट (b.1932) ने 1978 में एक किताब लिखी, जिसका नाम था:

The 100: A Ranking of the Most Influential Persons in History

इस किताब में डॉक्टर माइकल हार्ट ने पूरी इंसानी तारीख़ से सौ आदमियों का इंतिख़ाब किया, जो उनके नज़दीक तारीख़ के सबसे बड़े इंसान थे। उनकी इस फ़ेहरिस्त में पहला नाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह का था, जो उनके नज़दीक पूरी तारीख़-ए-इंसानियत के सबसे ज़्यादा कामयाब इंसान थे।

पैग़म्बर-ए-इस्लाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह के बारे में उनके ये अल्फ़ाज़ थे:

He was the only man in history who was supremely successful on both the religious and secular levels.

यानी वो तारीख़ में वाहिद इंसान हैं जो दुनियवी और मज़हबी दोनों एतिबार से बहुत ज़्यादा कामयाब इंसान थे।

डॉक्टर माइकल हार्ट ने ये तो लिखा है कि पैग़म्बर-ए-इस्लाम इंसानी तारीख़ के सबसे कामयाब इंसान थे, मगर उन्होंने ये नहीं बताया कि इस अज़ीम कामयाबी का राज़ क्या था।

ब्रिटिश ई०ई० क्लेट (1864-1950) उसने पैग़म्बर-ए-इस्लाम की अज़ीम कामयाबी का एतिराफ़ करते हुए लिखा है कि इसका सबब ये था कि उन्होंने मसाइब का सामना इस अज़्म के साथ किया कि नाकामी से कामयाबी को निचोड़ा:

He faced adversity with the determination to ring success out of failure.

मगर इन अल्फ़ाज़ से मुतअय्यन तौर पर मालूम नहीं होता कि पैग़म्बर-ए-इस्लाम की कामयाबी का राज़ क्या था।

राक़िम-उल-हुरूफ़ ने इस एतिबार से सीरत का मुताला किया है। मेरी दरियाफ़्त के मुताबिक़ इसका राज़ ये था कि आप पर हर क़िस्म की मुश्किलात पेश आईं, लेकिन आपने कभी रद्दे-अमल का तरीक़ा इख़्तियार नहीं किया। आपका तरीक़ा सिर्फ़ एक था — रिएक्शन के बजाय नतीजा-रुख़ी प्लैनिंग।

पैग़म्बर-ए-इस्लाम को अपनी 23 साल की पैग़ंबराना ज़िन्दगी में बार-बार मुख़ालिफ़ीन की तरफ़ से ज़ुल्म और मुख़ालिफ़त का सामना करना पड़ा। लेकिन आपने कभी रद्द-ए-अमल का तरीक़ा इख़्तियार नहीं किया। आपने हर मौक़े पर ज़ुल्म और मुख़ालिफ़त के बावजूद मनफ़ी रद्द-ए-अमल (negative reaction) के बजाय हिकमत पर मबनी मंसूबा-बंदी की। आपने कभी भी टकराओ का रास्ता इख़तियार नहीं किया, बल्कि हर हाल में मुसबत अंदाज़ अपनाया।

मसलन, क़दीम मक्का के लोगों ने आपको वतन छोड़ने पर मजबूर किया। आपने इसको टकराव का ईशू नहीं बनाया, बल्कि टकराव से हट कर अज़-सर-ए-नौ अपने अमल की मुसबत मंसूबा-बंदी की।इसी तरह फ़रीक़-ए-सानी ने उहुद की जंग छेड़ी। इसमें आपके साथी तक़रीबन सत्तर की तादाद में क़त्ल कर दिए गए। लेकिन इसके बाद आपने जवाबी तौर पर कोई जंगी कार्रवाई नहीं की, बल्कि हालात को पुर-अम्न तौर पर मैनेज करते हुए फ़रीक़-ए-सानी से हुदैबिया के मक़ाम पर अम्न का दस साल का मुआहिदा कर लिया, वग़ैरह। यही पॉलिसी आपकी पूरी ज़िन्दगी जारी रही।

पैग़म्बर-ए-इस्लाम का मिशन एक पुर-अम्न मिशन था। वो इंसान की ख़ैरख़्वाही पर मबनी था — यानी लोगों को अल्लाह की रहमत और जन्नत के रास्ते से बाख़बर करना। इस पुर-अम्न मिशन में लोगों से नफ़रत और तशद्दुद करने की कोई जगह नहीं थी।चुनाँचे आपने एक बा-उसूल इंसान की हैसियत से ये किया कि हर सूरत-ए-हाल का मुसबत जवाब (positive response) दिया। आपका तरीक़ा ये था — ज़ुल्म के बदले माफ़ी, तशद्दुद के जवाब में अम्न, दुश्मनी के जवाब में मोतदिल ताल्लुक़ात।यही तरीक़ा आपके मिशन के शायान-ए-शान था, और इसी तरीक़े ने आपको तारीख़ की अज़ीम कामयाबी अता की।

क़ुरआन में बताया गया है कि पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ उम्मत-ए-मुस्लिमा के लिए नमूना हैं (33:21)। इसका मतलब ये है कि उम्मत-ए-मुस्लिमा को भी अपने मामले में इसी नमूने को इख़्तियार करना चाहिए। यही कामयाबी का तरीक़ा है। कोई और तरीक़ा कामयाबी का तरीक़ा नहीं।

इस तरीक़े में कामयाबी का राज़ इसलिए है कि यही तरीक़ा फ़ितरत के मुताबिक़ है, और जो तरीक़ा फ़ितरत के मुताबिक़ हो, इस दुनिया में कामयाबी उसी तरीक़े की पैरवी से हासिल होती है। इस दुनिया में कोई दूसरा तरीक़ा कामयाबी का ज़रिया नहीं बन सकता।

ख़ैर का रास्ता

हज़रत अबू हुरैरा र० से रिवायत है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने कहा:

لَا يُؤْمِنُ الْعَبْدُ الْإِيمَانَ كُلَّهُ، حَتَّى يَتْرُكَ الْمِرَاءَ وَإِنْ كَانَ صَادِقًا

यानी, एक इंसान मुकम्मल ईमान के दर्जा को नहीं पहुँच सकता, यहाँ तक कि वो बेजा तकरार को तर्क कर दे अगरचे वो सच्चाई पर हो। (मुस्नद अहमद, ह०न० 8766)

हज़रत अबू उमामा र० से एक और रिवायत इन अल्फ़ाज़ में आई है। रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया:

أَنَا زَعِيمٌ بِبَيْتٍ فِي رَبَضِ الْجَنَّةِ
لِمَنْ تَرَكَ الْمِرَاءَ وَإِنْ كَانَ مُحِقًّا

यानी, मैं उस आदमी के लिए जन्नत में एक खुली और सुंदर आरामगाह की ज़िम्मेदारी लेता हूँ, जो बेजा बहस को तर्क कर दे अगरचे वो हक़ पर हो। (सुनन अबू दाऊद, ह०न० 4800)

ग़ौर से देखा जाए तो यही वो तर्ज़-ए-अमल है जो इंसानी समाज को एक पुर-अम्न समाज बनाता है। “जन्नत के अतराफ़ में एक घर” से मुराद मुमकिन तौर पर इसी क़िस्म का घर हो सकता है, जिसका तसव्वुर आज के दौर में फ़ार्म हाऊस वग़ैरह की शक्ल में किया जाता है।

यानी एक इंसान अगर हक़ पर रहते हुए भी अपने अना को कंट्रोल करके झगड़े के मौक़े पर ख़ामोशी का तरीक़ा इख़्तियार कर ले तो उसको जन्नती घर मिलने के अलावा एक और घर भी मिलेगा। ये घर सिर्फ़ उस जन्नती के एज़ाज़ व इकराम में इज़ाफ़ा के लिए होगा, न कि दुनिया की मानिंद रेगुलर घर में बोर्डम (boredom) का शिकार होने के बाद रिलैक्स (relax) होने के लिए।इन दोनों हदीसों में बहस व तकरार को डिसकरेज(discourage) करने से मुराद वो बहस और तकरार है जो मनफ़ी या बे-नतीजा बहस हो।

मौजूदा दौर में ऐसे उलेमा और मुक़र्रिरों की कसरत हो गई है जो अपनी तहरीर और तक़रीर से समाज में नफ़रत पैदा करते हैं। उनकी बातों से आम लोग इस्लाम के बारे में कन्फ़्यूज़न में मुबतला हो जाते हैं। आपस में नफ़रत पैदा हो जाती है, मसलन मुनाज़रा-बाज़ी, या कुफ़्र व

ज़लालत का हुक्म लगाना, या हक़ के नाम पर दो या ज़्यादा आलिमों का ब-ज़रिया दलील एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करना, वग़ैरह। सोशल मीडिया से पहले इसका नमूना आम तौर पर मुनाज़रा के स्टेजों पर देखने को मिलता था, या फ़तवों में। आजकल इसका नमूना आम तौर पर जलसों में देखने को मिलता है या सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर।

ये तमाम काम ब-ज़ाहिर दीन के नाम पर किए जाते हैं, मगर वो अपने नतीजा के एतिबार से आम लोगों के लिए दीन से दूरी का ज़रिया बन जाते हैं। अल्लाह तआला ने अपने किसी भी रसूल को इसलिए नहीं भेजा कि वो इंसानों को ख़ुदा के दीन के ताल्लुक़ से कन्फ्यूज़न में मुबतला करे, या उनका कोई अमल ख़ुदा के दीन की बदनामी का ज़रिया बन जाए। इसलिए मौजूदा दौर में जारी इस क़िस्म की कज-बहसियाँ इब्लीस को ख़ुश करने का ज़रिया तो बन सकती हैं, मगर वो अल्लाह तआला के नज़दीक पसंदीदा अमल नहीं हो सकतीं।

अंबिया का वारिस होने की हैसियत से एक आलिम-ए-दीन को कैसा होना चाहिए, वो क़ुरआन की एक आयत और उसकी तफ़्सीर से समझा जा सकता है।

क़ुरआन में है:

وَجَعَلَنِي مُبَارَكًا أَيْنَمَا كُنْتُ

यानी, हज़रत ईसा ने कहा कि मैं जहाँ कहीं भी रहूँ अल्लाह तआला ने मुझको बरकत वाला बनाया है। (19:31) मुजाहिद ताबिई ने बाबरकत की तशरीह ख़ैर का मुअल्लिम से की है।

(अल-इल्म लि-अबी ख़ैसमा ज़ुहैर बिन हरब 30)

इनतिबाक़ी मानी (applied meaning) के एतिबार से इसका मतलब ये है कि हक़ीक़ी आलिम-ए-दीन वो है जो समाज में ख़ैर और

भाईचारा और उम्मीद और यक़ीन का दाई बन कर रहे, न कि शर और नफ़रत और शक और कन्फ्यूज़न का ताजिर बन कर।

(मौलाना फ़रहाद अहमद)

साइंस का रुझान

अल्लाह ने साइंस को ख़ुदा की मारिफ़त के लिए बतौर ताईद पैदा किया है। लेकिन साइंस की तारीख़ बताती है कि ऐसा नहीं हो सका। इसकी वजह यह है कि बाद में साइंस के दो पहलू हो गए थे। एक, नज़रियाती साइंस (basic science), जिससे ख़ुदा की मारिफ़त हासिल होती है। इसके मुक़ाबले में दूसरा है अप्लाइड साइंस।

यह एक मालूम बात है कि हर उसूल का एक अमली एपलीकेशन होता है। मसलन स्प्रिचुअलिटी के अमली इस्तेमाल को अप्लाइड स्प्रिचुअलिटी (applied spirituality) कहा जाता है। इसी तरह साइंस के अमली इस्तेमाल को अप्लाइड साइंस (applied science) कहा जाता है। यानी बुनियादी तौर पर साइंस के दो शोबे हैं बेसिक साइंस , अप्लाइड साइंस।

बेसिक साइंस से मुराद नज़रीयाती साइंस है, इसको प्योर साइंस (pure science) भी कहा जाता है। इसके मुक़ाबले में अप्लाइड साइंस से मुराद साइंस के वो प्रैक्टिकल शोबे हैं, जो कम्पयूटर और मैडीकल और इंजीनीयरिंग , वग़ैरह कहे जाते हैं। चार सौ साल पहले जब साइंस शुरू हुई तो उस वक़्त साइंस सिर्फ़ साइंस के बेसिक शोबों का नाम होता था।

इब्तिदाई ज़माने में बेसिक साइंस का ज़्यादा रिवाज था। लेकिन तमाम माद्दी फ़ायदे अप्लाइड साइंस से हासिल होते हैं। इस वजह से

सारे लोग अप्लाइड साइंस की तरफ़ जा रहे हैं, अब बहुत कम लोग नज़री साइंस की तरफ़ जाते हैं, क्योंकि इस मे माद्दी फ़ायदा बहुत कम है।

बीसवीं सदी में बेसिक साइंस का शोबा ज़्यादा नुमायाँ था। उस ज़माने में हक़ायक़ साइंस से ज़्यादा बहस हुआ करती थी। चुनाँचे अक्सर बड़े साइंटिस्ट इसी नज़रीयाती दौर में पैदा हुए। बेसिक साइंस में जो मशहूर हुए, उनमें से चंद यह हैं: सर जेम्स जीन्स, सर आर्थर एडिंगटन, अल्फ्रेड नॉर्थ व्हाइटहेड (Alfred North Whitehead), फ्रेड होयल (Fred Hoyle), वग़ैरह। मौजूदा ज़माने में अप्लाइड साइंस का ग़लबा हो गया है। यह लोगों के अंदर मैटीरियलिज़्म के फैलाव की बुनियाद पर है, न कि ख़ुद साइंस के तक़ाज़े की बिना पर।

ख़ालिक़ का वुजूद

रेने डेकार्ट (Rene Descartes, 1596–1650) फ्रांस का मशहूर फ़लसफ़ी है। उसके सामने यह फ़लसफ़ियाना सवाल था कि इंसान के वुजूद का सबूत क्या है। उसने कहा कि — मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।

I think, therefore, I am. (The Principles of Philosophy by Descartes, part 1)

यह फ़ॉर्मूला बिल्कुल दुरुस्त है। इस फ़ॉर्मूले की तौसीअ करते हुए यह कहा जा सकता है कि जहाँ इंजीनीयरिंग है, वहाँ इंजीनीयर है। जहाँ बिल्डिंग है, वहाँ बिल्डर है। इसी तरह जहाँ तख़्लीक़ है, वहाँ ख़ालिक़ है —

Where there is creations, there is creator.
Where there is engineering, there is an engineer.
Where there is a design, there is a designer.

यह बिल्कुल एक सीधी-सी बात है। इंसान की फ़ितरत इस मंतिक को तस्लीम करती है। लेकिन कुछ लोग ज़ेहनी तशकीक की बुनियाद पर यह कहते हैं कि अगर ख़ुदा ने काइनात को बनाया तो ख़ुद ख़ुदा को किसने बनाया। मगर यह सवाल एक ग़ैर-मंतिकी सवाल है।

असल यह है कि हमारे सामने एक हक़ीक़ी दुनिया मौजूद है। हम मजबूर हैं कि इस दुनिया को मानें। इसलिए इस दुनिया में हमारे लिए जो ऑपशन है, वह बे-ख़ुदा काइनात और बा-ख़ुदा काइनात के दरमियान नहीं है, बल्कि वह बा-ख़ुदा काइनात और ग़ैर-मौजूद काइनात के दरमियान है।

चूँकि हम काइनात की मौजूदगी का इनकार नहीं कर सकते, इसलिए हम ख़ुदा की मौजूदगी का भी इनकार नहीं कर सकते —

The choice is not between a universe with God and a universe without God. The real choice is between a universe with God — or no universe at all.

सियासी इक़्तिदार

फ़ितरत का एक क़ानून क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है:

قُلِ اللَّهُمَّ مَالِكَ الْمُلْكِ تُؤْتِي الْمُلْكَ مَنْ تَشَاءُ
وَتَنْزِعُ الْمُلْكَ مِمَّنْ تَشَاءُ وَتُعِزُّ مَنْ تَشَاءُ وَتُذِلُّ
مَنْ تَشَاءُ بِيَدِكَ الْخَيْرُ إِنَّكَ عَلَى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ

तुम कहो, ऐ अल्लाह, सल्तनत के मालिक तू जिसको चाहे

सल्तनत दे और जिससे चाहे सल्तनत छीन ले, और तू जिसको चाहे इज़्ज़त दे और जिसको चाहे ज़िल्लत दे। तेरे हाथ में है सब ख़ूबी। बेशक तू हर चीज़ पर क़ादिर है। (3:26)

सियासी इक़्तिदार इज्तिमाई नज़्म (administration) का एक हिस्सा है। वह उमूमी मस्लहत के तहत कभी एक गिरोह को मिलता है, और कभी दूसरे गिरोह को।इक़्तिदार ख़्वाह किसी गिरोह को दिया जाए, या उससे वापस ले लिया जाए, दोनों आरज़ी ज़िम्मेदारी के मामलात हैं। दोनों फ़रीक़ों को चाहिए कि वह इस मामले को मुसबत सोच के तहत क़बूल करें — जिसको दिया जाए, वह भी, और जिससे वापस लिया जाए, वह भी।

इस उसूल की रोशनी में मुस्लिम तारीख का मुताला कीजिए। मुस्लिम तारीख का आग़ाज़ सातवीं सदी ईसवी के रब्अ-ए-अव्वल में हुआ। तक़रीबन एक हज़ार साल तक क़दीम आबाद दुनिया का एक मुतय्यन रक़बा मुस्लिम क़ौमों के ज़ेरे-इंतज़ाम रहा। तक़रीबन एक हज़ार साल के बाद यह इक़्तिदार उनसे लेकर दूसरी क़ौमों की तरफ मुन्तक़िल कर दिया गया। दुसरे लफ़्ज़ों में मुसलमानों का इक़्तिदार दुनिया पर साइंसी तहज़ीब से पहले रहा, और उनसे इक़्तिदार ले लिया गया जब कि साइंसी तहज़ीब का दौर आ गया। साइंसी तहज़ीब को वजूद में लाने वाले वह लोग थे, जिनको मग़रिबी अक़्वाम कहा जाता है। इस सिलसिले में क़ुरआन व सुन्नत में जो हवाले मिलते हैं, उनका मुताला तत्बीक़ी अंदाज़ (applied way) में किया जाए तो इस मामले की हिकमत वाज़ेह तौर पर मालूम होती है।

जब क़ुरआन उतरा और उम्मत-ए-मुहम्मदी को इसकी ज़िम्मेदारी सौंपी गई तो इस ज़िम्मेदारी के दो बड़े हिस्से थे। एक, सच्चाई की हिफ़ाज़त करना (सूरह अल-हिज्र, 15:9) और दूसरा, सच्चाई को लोगों के

सामने खोलकर बयान करना।(सूरह फ़ुस्सिलत, 41:53) तारीख बताती है कि उम्मत-ए-मुस्लिमह को जो इक़्तिदार दिया गया, उसको उन्होंने हिफ़ाज़त-ए-दीन के मामले में बहुत से ख़ूबी अंजाम दिया, लेकिन फ़ितरत के क़ानून (सूरह अल-हदीद, 57:16) के मुताबिक, उम्मत-ए-मुस्लिमह पर ज़वाल का दौर आया। अब उनका हाल वह हो गया जो क़ुरआन में क़ौम-ए-यहूद के हवाले से इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है —

مَثَلُ الَّذِينَ حُمِّلُوا التَّوْراةَ ثُمَّ لَمْ يَحْمِلُوها

यानी, उन लोगों को तौरात का हामिल बनाया गया फिर उन्होंने उसको न उठाया। (62:5)

मौजूदा दौर में उम्मत-ए-मुस्लिमा अपनी मस्जिदों, मदरसों और इदारों के ज़रिए दीन की हिफ़ाज़त तो करती रही, लेकिन ज़माने के नए हालात के मुताबिक दीन को समझाने और पेश करने में कमज़ोर पड़ गई। इसकी एक वजह यह है कि इज्तेहाद की कमी के कारण वह ज़माने की सही समझ से दूर हो गई और नए दौर की ज़रूरतों के मुताबिक दीन को लागू करने में पीछे रह गई।

अब अल्लाह तआला के बदलाव के नियम (सुरह मुहम्मद, 47:38) के मुताबिक हालात में तब्दीली आई। मिल्लत-ए-मुस्लिमह के लोग फ़ॉर्म की सतह पर दीन का हिफ़ाज़ती ढांचा बदस्तूर बरक़रार रखे हुए थे। लेकिन ज़माने के तक़ाज़े के मुताबिक दीन की तबीयीन-ए-मज़ीद (सूरह फ़ुस्सिल, 41:53) में वह मुकम्मल तौर पर नाकाम हो गए थे। यानी, क़ुरआन के मुताबिक, काइनात और इंसान के अंदर खोजी गई हक़ीक़तों के ज़रिए हक़ को और ज़्यादा साफ़ रूप में समझाना।

तारीख का यह मरहला (juncture) उन्नीसवीं सदी के ख़ातिमा और बीसवीं सदी के आग़ाज़ के वक़्त पेश आया। अब अल्लाह तआला ने तक़्सीम-ए-कार के उसूल को इस्तेमाल किया, यानी मग़रिबी

क़ौमों को ताईद का रोल (supporting role) और उम्मत-ए-मुस्लिमह के वास्ते दीन के लिए पैदा-शुदा मौक़ों को मुमकिना तौर पर अवेल (avail) करने का रोल। इस सपोर्टिंग रोल का ज़िक्र हदीस की किताबों में वाज़ेह तौर पर मौजूद है।

इस मामले में सहीह अल-बुख़ारी (हदीस नंबर 3062) की रिवायत से एक अहम बात मालूम होती है। वह यह कि अगर मान लिया जाए कि ये मददगार उम्मत-ए-मुस्लिमा को बे-दीन नज़र आएँ, तब भी दीन के मामले में अपने मददगार की हैसियत से उन्हें क़बूल करना चाहिए। अगर मुसलमान ऐसा न करें, तो वह अपनी ज़िम्मेदारी पूरी नहीं कर पाएंगे। तजुर्बा बताता है कि मुसलमान इसी जगह अपनी ज़िम्मेदारी निभाने में नाकाम रहे हैं।

मैन मेड, गॉड मेड

बीबीसी उर्दू की वेबसाइट पर 28 जुलाई 2017 को एक रिपोर्ट इस उनवान से छपी थी —

“क्या मशीनें इंसानों की जगह ले लेंगी?”

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के फ्यूचर ऑफ ह्यूमैनिटी इंस्टिट्यूट की कटजा ग्रेस (Katja Grace) और उनके साथियों ने इस मौज़ू पर काफ़ी काम किया है। उन्होंने दुनिया भर के 352 साइंसदानों से बात करके इस सवाल का जवाब तलाश करने की कोशिश की है।

इस रिसर्च के मुताबिक इस बात की पचास फ़ीसद उम्मीद है कि अगले सवा सौ साल में इंसान का हर काम मशीनें करेंगी — रोबोट के ताल्लुक़ से बराबर खबरें आती रहती हैं। मगर क्या ऐसा हो सकता है।

मज़कूरा रिसर्च में सबसे हैरत-अंगेज़ बात यह सामने आई कि मशीनें इतनी तेज़ी से बेहतर नहीं हो रही हैं जितना कि साइंसदान दावा कर रहे थे। मशीनों का दौर आने में अभी काफ़ी वक़्त लगेगा।

इस रिसर्च में ऑटोमेटेड इनसाइट्स (Automated Insights) के चीफ़ ऑपरेटिंग ऑफिसर एडम स्मिथ के हवाले से यह कहा गया है कि टेक्नोलॉजी का मक़सद इंसानों की मदद करना है। वह इंसानों की जगह मुकम्मल तौर पर नहीं ले सकती। पहले मशीनों के ज़रिए सहाफ़त नहीं होती थी, लेकिन आज भी एआई (AI) से तैयार किए गए लेखों में इंसानी मदद की ज़रूरत होती है।

हक़ीक़त यह है कि रोबोट एक इंसान मेड प्रोडक्ट है, वह उस ज़हानत और सलाहियत को हरगिज़ नहीं पा सकता, जो ख़ुद इंसान के अंदर मौजूद है। इस हक़ीक़त को ज़ेल के वाक़िये से समझा जा सकता है —

9 जनवरी 2022 को बिज़नेस इनसाइडर (इंडिया) की वेबसाइट पर छपी एक दिलचस्प रिपोर्ट के मुताबिक, यूनाइटेड किंगडम के एक कस्बा मिल्टन कीन्स (Milton Keynes) में एक रेस्टोराँ ने चार रोबोट कस्टमर्स को खाना सर्व (serve) करने के लिए जापान से खरीदा था। मगर बाद में रेस्टोराँ के मालिक की यह राय बनी कि मशीन इंसान की जगह नहीं ले सकती। उसका कहना है कि रोबोट में कुछ बुनियादी खामियां पाई जाती हैं, जो इस बात का सबूत हैं कि होटल इंडस्ट्री में इंसान एक निहायत अहम किरदार अदा करता है। मसलन रोबोट ज़्यादा ज़ेवरात वाले कस्टमर को देखकर काम नहीं कर सकते हैं, वह ग़ैर ज़रूरी सवालात करते हैं, बैटरी ख़त्म होने पर काम अधूरा छोड़कर चार्ज होने के लिए फ़ौरन रुक जाते हैं, और सबसे बढ़कर यह कि वह इंसान नहीं हैं, जो आगे बढ़कर ग्राहकों का गर्मजोशी से ख़ैरमक़दम कर सकें और उनको अपनाइयत का एहसास दिला सकें।

The owners of a restaurant employing four robot waiters revealed the drawbacks and explained why humans are crucial.Restaurant owners employing four robot servers say machines wont replace all their human servers. They said their robots had drawbacks, such as running away from customers wearing lots of jewelry.

Amy, Ella, Will, and Josh work in a restaurant as servers. They bring food to tables, interact with guests, and from time to time, they roll away to recharge their batteries. All four of them are robots, and they are the main attraction at Robotazia, a restaurant in Milton Keynes, UK.

Even so, Robotazias owners, Joy Gittens and Mark Swannell, told Insider they will never replace all their human servers with machines because the robots have a few notable drawbacks.

The robots turn around and roll away from guests wearing lots of metal jewelry, which has something to do with signals being reflected off the metal. “They will go over to the table for delivery but not let people take their food off the tray, and then turn away,” Gittens said. Gittens and Swannell said they have to first check if customers are wearing lots of jewelry in order for them to “get the best experience.”

Amy has an interactive function that allows her to respond to customers’ questions. “We turned that off

because you would never get a delivery done, as she would stay there having conversations," Gittens said. The robots, which were manufactured in Japan, also spoke in "an odd sort of English which didn't quite make sense," Swannell said. Amy, who served my meal, spoke with a robotic American accent, but she didn't ask any questions or respond to mine. Instead, she said, "Bon appétit," before heading back to her base.

When the robots need to recharge, they make a quick exit. "If they have had enough and they feel that their charge is going low, they tell you they need to recharge," Gittens said. "No matter what they are doing, they go off and put themselves at their set points," she said, referring to their charging stations. Amy did this during one of the restaurant's busiest Saturdays, Gittens said. Gittens said she made light of the situation by telling guests that "at least she knows when she needs a recharge." The robots are also capable of displaying certain emotions. For example, if a customer gets too close, a tear appears on the robot's face.

The robots can deliver food on trays, but they can't clear tables. They also can't check if a person is old enough to buy alcohol. Further, they can't clean themselves or change their batteries. Gittens and Swannell employ four humans, one for each robot, to keep them in working order. The robots are more expensive to employ than human servers, Swannell

said. This is partly due to maintenance. Swannell said he fixes or tweaks parts on the robots every Tuesday.

Swannell and Gittens say they value their human servers. Robotazia's website says, "People are at the core of our business and the hospitality industry." Gittens said, "Human engagement is still a wonderful thing to have. It's the warmth of that person saying, 'How are you? Thank you for coming to Robotazia.'"

ऐसी खबरें आती रहती हैं। यह वाक़ियात इस हक़ीक़त को वाज़ेह करते हैं कि अगरचे इंसान एक महदूद और आजिज़ मख़्लूक़ है, लेकिन उसे एक निहायत ज़हीन और क़ादिर-ए-मुतलक़ (All powerful) हस्ती ने पैदा किया है। उस हस्ती ने इंसान को अपनी तरफ से इतनी ज़हानत अता की है कि वह रोबोट जैसे हैरत-अंगेज़ आलात तो बना सकता है, मगर उनमें वह खूबी हरगिज़ नहीं डाल सकता जो ख़ुद इंसान के अंदर मौजूद है।

स्पेन का सबक

मैंने दो बार स्पेन का सफ़र किया है, और स्पेन के हालात का गहराई के साथ मुताला किया है। स्पेन में पूरी दुनिया के मुसलमानों के लिए एक क़ीमती मिसाल है। स्पेन में अब्दुर्रहमान अल-दाख़िल की क़ायम की हुई हुकूमत एक लंबी मुद्दत तक क़ायम रही। इसके बाद मक़ामी लोगों ने अरबों को हमला-आवर के खाने में डाल दिया। एक मुद्दत तक यह चला कि अरबों को मारो, और बाहर निकालो। लेकिन कुछ अरसा बाद स्पेनियों को महसूस हुआ कि यह हम ख़ुद अपने असासे से अपने

आपको महरूम कर रहे हैं। इस मुद्दत में स्पेन की इकोनॉमी की तरक़्क़ी रुक गई। वह मनफ़ी सरगर्मियों में मशग़ूल हो गए। लेकिन फिर उन्होंने यह देखा कि स्पेन में अरबों के दौर के बहुत से तारीखी आसार हैं, जो सैयाहों को अट्रैक्ट (attract) करते हैं।

चुनांचे उन्होंने इन तारीख़ी आसार को दुबारा डेवलप किया। इसके नतीजे में यही स्पेन दुबारा सैयाहों की दिलचस्पी का मरकज़ बन गया। स्पेन में सैयाहों की आमद इतनी बढ़ी कि स्पेन जो पहले ग़ैर-तरक़्क़ी-याफ़्ता मुल्क बन गया था, वह दुबारा मज़ीद इज़ाफ़े के साथ एक तरक़्क़ी-याफ़्ता मुल्क बन गया। टूरिज्म ने मौजूदा स्पेन की तरक़्क़ी में निहायत अहम किरदार अदा किया है।

क़दीम स्पेन जो अहल-ए-स्पेन के लिए इससे पहले उनकी मनफ़ी सोच की बिना पर एक बोझ (liability) बन गया था, वह दुबारा अहल-ए-स्पेन की मुस्बत सोच की बिना पर उनके लिए सरमाया (asset) बन गया। पहले जो चीज़ स्पेन की तारीख़ का मामूली हिस्सा बनी हुई थी, अब वह उसकी तारीख़ का ग़ैर-मामूली हिस्सा बन गई। स्पेन के वाक़े में इंसान के लिए यह सबक़ है कि वह अपने समाज के लिए फ़ायदेमंद बनकर ज़िंदगी गुज़ारे तो किसी को उससे शिकायत न होगी। हर औरत और मर्द को चाहिए कि वह देखे कि सुबह व शाम लोगों के दरमियान वह जिस सुलूक का मुज़ाहिरा करता है, वह कैसा है। वह तामीरी है या तख़रीबी, वह मुस्बत है या मनफ़ी। उसके अंदर जो शख़्सियत बन रही है, वह दूसरों का भला चाहने वाली है या दूसरों से अपना फ़ायदा हासिल करने वाली। वह समाज का एक देने वाला मेंबर (giver member) है या लेने वाला मेंबर, उसकी ज़ात से दूसरों को फ़ायदा पहुँच रहा है या नुक़सान, वग़ैरह। कामयाब इंसान वह है, जो ज़िंदगी की इस नौइयत को समझे, और उसके मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारे।

डायरी 1986

6 जुलाई 1986

जनाब सिकंदर बख़्त साहब (पैदाइश 1918) तशरीफ़ लाए। मुसलमानों में वह आम तौर पर बदनाम हैं। मगर गुफ़्तगू से अंदाज़ा हुआ कि उनके अंदर मुस्लिम मिल्लत का दर्द है और वह मुसलमानों की ख़िदमत करना चाहते हैं। (2004 में उनका इंतिक़ाल हो गया)

सिकंदर बख़्त साहब नौजवानी की उम्र से सियासत में रहे हैं। उन्होंने मिस्टर मुहम्मद अली जिन्नाह (1876–1948) का एक वाक़िया बताया, जिनको मुसलमानों ने क़ायदे-आज़म बनाया था। किसी मक़ाम पर मुस्लिम लीग का इजलास था। मिस्टर जिन्नाह वहाँ तक़रीर करने के लिए गए। उन्होंने देखा कि मुस्लिम अवाम काफ़ी तादाद में जमा हैं, मगर अख़बार के नुमाइंदे नज़र नहीं आए। मिस्टर जिन्नाह ने इज्तिमा के इंतिज़ाम करने वालों से कहा:

Where are the pressmen? Do you think I came here to address these fools.

अख़बारी नुमाइंदे कहाँ हैं? क्या आप समझते हैं कि मैं इन बेवक़ूफ़ों को ख़िताब करने के लिए यहाँ आया हूँ।

यह एक हक़ीक़त है कि मिस्टर जिन्नाह मुसलमानों को हक़ीर समझते थे। इसके बावजूद मिस्टर जिन्नाह को मुसलमानों में ज़बरदस्त मक़बूलियत हासिल हुई। इसकी वजह सिर्फ एक थी। और वह यह कि उन्होंने मुसलमानों को वह सियासी ख़ुराक दी जो इस मुल्क के मुसलमानों को सबसे ज़्यादा पसंदीदा है, यानी क़ौमी फ़ख़्र और एंटी नॉन-मुस्लिम जज़्बात को फ़ीड करना।

7 जुलाई 1986

फ़िक़्ह की मशहूर किताब है जिसका नाम शामी (या फतावा शामिया) है। यह अल्लामा इब्न आबिदीन शामी की तरफ मंसूब है। शामी का असल नाम "रद्द-अल-मुहतार अली अलदर अलमुख़्तार" है। रद्द-अल-मुहतार हाशिया (footnote) है दर अलमुख़्तार का और दर अलमुख़्तार शरह है तनवीर उल-अबसार की।यानी तनवीर उल-अबसार मतन, अलमुख़्तार शरह, और रद्द-अल-मुहतार हाशिया दर अलमुख़्तार का।

तनवीर उल-अबसार के मुसन्निफ़ का नाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह तिमुरताशी (939–1004 हि०) है। दर अलमुख़्तार के मुसन्निफ़ का नाम मुहम्मद बिन अली हसकफ़ी (1025–1088 हि०) है और रद्द-अल-मुहतार के मुसन्निफ़ मुहम्मद अमीन बिन सैयद शरीफ़ उमर (1198–1252 हि०) हैं।

बाद के ज़माने में मुसलमानों में एक अजीब इल्मी रिवाज पैदा हुआ, जिसको शरह कहा जाता है। यानी किसी किताब की शरह और फिर उस शरह की शरह। इस तरीक़-ए-तस्नीफ़ का दो वाज़ेह नुक़सान है।

एक यह कि बाज़ किताबों का मत्न, अगर अकीदतन नहीं तो अमलन मुक़द्दस क़रार दिया गया। इन मुतून के मुताल्लिक़ शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर यह समझ लिया गया कि उनमें जो कुछ दर्ज है, वह बहरहाल मुस्तनद है। अब हमें जो कुछ करना है वह सिर्फ यह कि उसको पढ़कर उसकी शरह करें।

इसका दूसरा नुक़सान ज़ेहनी जुमूद की शक्ल में उम्मत को मिला। तख़्लीक़ी फ़िक्र (creative thinking) ख़त्म हो गई। सिर्फ तक़लीदी फ़िक्र इल्मी दुनिया में बाक़ी रह गई।ऐन उस ज़माने में जब कि मग़रिबी दुनिया अपनी तहक़ीक़ी फ़िक्र के ज़रिये से आलमी सियादत हासिल

कर रही थी, मुसलमान अपनी तक़लीदी फ़िक्र के नतीजे में पस्ती में पड़े रहे। और सदियों के लिए इंसानी क़ाफ़िले से पीछे हो गए।

8 जुलाई 1986

एक मुसलमान बिज़नेसमैन मुलाक़ात के लिए तशरीफ़ लाए। मैं उनको पिछले चालीस साल से जानता हूँ। उन्होंने 1945 में उत्तर प्रदेश में एक मामूली काम से अपनी ज़िंदगी का आग़ाज़ किया। एक दस्तकारी का काम था, जिसके तन्हा मज़दूर वह ख़ुद थे। उनकी इस दस्तकारी के 99 फ़ीसद ख़रीदार हिंदू थे।

इस दौरान उनकी तरक़्क़ी होती रही। वह पहले पैदल चलते थे। इसके बाद उन्होंने एक साइकिल खरीदी। इसके बाद उन्होंने शहर में एक ज़ाती मकान बनाया, जिसके सामने एक जीप खड़ी हुई नज़र आने लगी। इसके बाद वह वक़्त आया जब कि वह कारों के एक दस्ते के मालिक हो गए। अब वह एक लिमिटेड कंपनी के चेयरमैन हैं। वह हवाई जहाज़ों पर सफ़र करते हैं। मुझसे मिलने के लिए वह नई मर्सिडीज़ कार में तशरीफ़ लाए थे।

उनकी ये तरक़्क़ियाँ बिला शुब्हा मेरे लिए ख़ुशी का बाइस हैं। मगर मैं यहाँ उनके एक विरोधाभास का ज़िक्र करना चाहता हूँ। उनका कारोबार ज़्यादा तर सरकारी ऑफिसों से है। हिंदुस्तान की कई रियासतों में उनके सरकारी ठेके चल रहे हैं। इस तरह उनका कारोबारी ताल्लुक़ जिन लोगों से है उनमें 99 फ़ीसद हिंदू होते हैं। इन हिंदुओं से वह बेहतरीन ताल्लुक़ात बनाए हुए हैं। उनसे मीठी गुफ़्तगू करना, उनको तोहफ़े देना, उनकी ज़रूरतों में काम आना, उनको ख़ुश करने का हर तरह से जतन करना, वग़ैरह। मगर दूसरी तरफ उनका यह हाल है कि जब भी मुझसे मिलते हैं तो किसी न किसी बहाने हिंदू क़ौम और हिंदू हुकूमत की बुराई करते हैं। अपने मामला-दार हिंदुओं के लिए वह

तालीफ़-ए-क़ल्ब (Winning hearts) के उसूल पर आमिल हैं। मगर दूसरे हिंदुओं के लिए वह पूरी तरह मुस्लिम क़ौम-परस्त बने हुए हैं।

यही हिंदुस्तान के तक़रीबन तमाम मुसलमानों का तरीक़ा है। इस मुल्क का हर मुसलमान, ख़्वाह वह असाग़िर में से हो या अकाबिर में से, डबल स्टैंडर्ड का केस बना हुआ है। वह अपने साहिब-ए-मामला हिंदू के लिए कुछ और है और दूसरे हिंदुओं के लिए कुछ और।कैसे अजीब हैं वह मुसलमान जिनको ख़ुद अपनी ही ज़िंदगी के तजुर्बे से सबक़ नहीं मिलता।

9 जुलाई 1986

7 जुलाई 1986 के तमाम अख़बारों की शाह-सुर्ख़ी सिर्फ एक थी:

“जग जीवन राम का इंतिक़ाल हो गया”

जग जीवन राम (1908–1986) डॉक्टर अंबेडकर के बाद दूसरे सबसे बड़े हरिजन लीडर थे। उनको जदीद हिंदुस्तान में अज़ीम-तरीन सियासतदानों की फ़ेहरिस्त में जगह मिली। मगर जनता हुकूमत के बाद जब उनका ज़वाल हुआ तो फिर वह दुबारा उठ न सके। दिल्ली के एक अंग्रेज़ी अख़बार ने उनकी मौत पर अपने इदारिये में लिखा:

In the death of Jagjiwan Ram the country lost one of the last leading representatives of the pre-independence era. Babuji had a messianic sense of mission which he shared with our greats like Nehru and Mrs. Gandhi. But the great reaper precluded his return to glory.

(The Hindustan Times, July 8, 1986)

बेहतर और स्वाभाविक रूप:

जगजीवन राम की मौत से देश, आज़ादी से पहले के दौर के बड़े नुमाइंदों में से एक से महरूम हो गया। बाबूजी (जगजीवन राम) अपने

मक़सद को लेकर लोगों की भलाई और सुधार का गहरा एहसास रखते थे। वह नेहरू और श्रीमती गांधी जैसी बड़ी शख़्सियतों के साथी रहे। लेकिन मौत ने उन्हें दोबारा अपनी पुरानी इज़्ज़त और शान की ओर लौटने का मौक़ा नहीं दिया।

अख़बार के एडिटर की नज़र में ब-ज़ाहिर सिर्फ "जग जीवन राम" जैसे लोग हैं, जिनके लिए मौत उनकी आख़िरी अज़मत तक पहुँचने में रुकावट बन गई। लेकिन एडिटर अगर मौत के उस पार तक देख सकता तो उसको नज़र आता कि बहुत से वह दूसरे लोग भी अपनी आख़िरी अज़मत से यकसर महरूम हैं, जिनका नाम अख़बार के एडिटर ने अज़मत की चोटी तक पहुँचने वाले इंसानों की फ़ेहरिस्त में नुमायाँ तौर पर लिख रखा है।

10 जुलाई 1986

एक अरब डिप्लोमैट हिंदुस्तान से वापस जाने लगे तो रवाना होने से एक दिन पहले वह हमारे दफ़्तर में आए। उनके साथ उनकी बड़ी गाड़ी में बहुत सी किताबें भी लदी हुई थीं। उन्होंने कहा कि ये मेरी ज़ाती लाइब्रेरी की किताबें हैं। दिल्ली के ज़माना-ए-क़याम में, मैंने उनको अपनी रिहाइशगाह पर जमा किया था। अब हिंदुस्तान छोड़ते हुए मैं इन किताबों को इस्लामी मरकज़ के कुतुबख़ाने के हवाले कर रहा हूँ।

ये किताबें सब की सब दो ज़बानों में थीं, अरबी और अंग्रेज़ी। एक किताब गांधी जी की मशहूर सवानिह-उमरी थी:

The Life of Mahatma Gandhi by Louis Fischer

मैंने उनसे पूछा कि आपकी किताबों के ज़खीरे में महात्मा गांधी की लाइफ़ भी है। क्या इसका मतलब यह है कि आप महात्मा गांधी के अकीदतमंदों में से हैं? वह यह सवाल सुनकर मुस्कराए। उन्होंने कहा कि इसका यह मतलब नहीं। ये किताबें मेरे शख़्सी ज़ौक़ से ज़्यादा मेरे

डिप्लोमैट होने की हैसियत से ताल्लुक़ रखती हैं। किसी मुल्क का डिप्लोमैट जब दूसरे मुल्क में जाता है तो उससे यह उम्मीद की जाती है कि वह उस मुल्क के हालात को जानेगा और वहाँ की मुमताज़ शख़्सियतों से बा-ख़बर होगा। यही वह चीज़ है, जिसकी बिना पर मैंने हिंदुस्तान में आने के बाद महात्मा गांधी को पढ़ा, जिनको 'फादर ऑफ़ दी नेशन' कहा जाता है।

अक्सर ग़लत-फ़हमियाँ इस लिए पैदा होती हैं कि आदमी पूरी बात जाने बग़ैर राय क़ायम कर लेता है। मज़कूरा वाक़िया को अगर एक शख़्स बिला तहक़ीक़ देखे तो वह यह राय क़ायम कर लेगा कि अरब डिप्लोमैट महात्मा गांधी से मुतास्सिर था। मगर तहक़ीक़ ने बताया कि इसका ताल्लुक़ डिप्लोमैट की सरकारी ड्यूटी से था, न कि उसके ज़ाती ज़ौक़ से।

11 जुलाई 1986

महात्मा गांधी हिंदुस्तान के अवाम को अंग्रेज़ के ख़िलाफ़ उठाना चाहते थे। इस मक़सद के लिए उन्हें बहुत सी रिवायतें तोड़ देनी पड़ीं। तालिब इल्मों को उन्होंने उकसाया कि वह तालीम छोड़ कर सड़कों पर आ जाएं। मज़दूरों को उन्होंने उकसाया कि वह हड़ताल करके कारोबार को मफ़लूज कर दें। किसानों को उन्होंने उकसाया कि वह ज़मींदारों की बड़ाई तस्लीम न करें। टैक्स देने वालों को उन्होंने उकसाया कि वह गवर्नमेंट को टैक्स न दें। महात्मा गांधी ने अवाम की ताक़त से आज़ादी हासिल कर ली। मगर यह आज़ादी रिवायतों को तोड़ कर हासिल हुई थी।

रिवायतों को तोड़ने का यह सिलसिला आज़ादी के बाद मज़ीद शिद्दत के साथ जारी रहा। हर शोबा में जल्द तरक़्क़ी के जोश में रिवायतें तोड़ी जाती रहीं। हत्ता कि इस मुल्क में रिवायतों का तसल्सुल ख़त्म हो

गया। इसकी ताज़ा मिसाल यह है कि दिल्ली के डिस्ट्रिक्ट जज मिस्टर महेश चंद्र को तरक़्क़ी देकर दिल्ली हाई कोर्ट का जज बनाया गया है। यह तक़र्रुरी रिवायतों को तोड़ कर हुई है। अंग्रेज़ों के ज़माने से यह रिवायत चली आ रही थी कि सीनियारिटी की बुनियाद पर तरक़्क़ियाँ दी जाती थीं। दिल्ली में मिस्टर महेश चंद्र के मुक़ाबले में दो सीनियर जज थे जो तरक़्क़ी के अव्वलन मुस्तहिक थे, मगर उनको छोड़कर मिस्टर महेश चंद्र को तरक़्क़ी दे दी गई।

यही तमाम इन्क़िलाबी तहरीकों का हाल हुआ है। ख़्वाह वह रूस की कम्युनिस्ट तहरीक हो या हिंदुस्तान की गांधियाई तहरीक या ईरान की ख़ुमैनी तहरीक। हर एक ने यही किया कि रिवायतों को तोड़ कर इन्क़िलाब ले आए, और रिवायतों को तोड़ कर नया समाज बनाना चाहा। नतीजा यह है कि बिला इस्तिस्ना हर एक को अपने मक़सद में नाकामी हुई। इंसानी समाज हमेशा रिवायतों के ज़ोर पर अमल करता है और रिवायतों के ज़ोर को यह तहरीकें पहले ही ख़त्म कर चुकी थीं।

इस उमूम में सिर्फ़ एक नुमायां इस्तिस्ना है और वह पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ का है। पैग़म्बर-ए-इस्लाम तारीख़ की वाहिद शख़्सियत हैं जिन्होंने रिवायतों को तोड़े बग़ैर इन्क़िलाब बरपा किया और रिवायतों को तोड़े बग़ैर अपनी मतलूबा इस्लाहात राइज कीं। आप की ज़िंदगी का तन्हा यही पहलू यह साबित करने के लिए काफ़ी है कि आप ख़ुदा के रसूल थे।

12 जुलाई 1986

अमेरिकन राइटर अम्ब्रोज़ बियरस (Ambrose Gwinnett Bierce, 1842-1914) का एक क़ौल है:

Philosophy is a route of the many roads leading from nowhere to nothing.

फ़लसफ़ा बहुत से रास्तों का एक सफ़र है जो कहीं से न शुरू होता और न कहीं ख़त्म होता है।

फ़लसफ़ा को क़दीम ज़माने में उलूम की मलिका (Queen of Arts) कहा जाता था। पिछले पांच हज़ार साल के अंदर आला तरीन दिमाग़ों ने फ़लसफ़ा के मैदान में अपनी मेहनतें सर्फ़ की हैं। यह एक हक़ीक़त है कि फ़लसफ़ा की तहक़ीक़ पर जितना काम हुआ है, उतना किसी भी दूसरे शोबा-ए-इल्म में नहीं हुआ। इसके बावजूद फ़लसफ़ा ही वाहिद इल्मी शोबा है जिसका कोई मुस्बत हासिल नहीं। फ़लसफ़ा ने ज़ेहनी उलझाव और पुर-पेच बहसों के सिवा इंसान को कुछ और नहीं दिया। हत्ता कि आज तक यह बात भी वाज़ेह न हो सकी कि फ़लसफ़ा का आग़ाज़ क्या है और उसका इंतिहा क्या।

फ़लसफ़ा की इस नाकामी की वजह सिर्फ़ एक है और वह यह है कि फ़लसफ़ा एक ऐसे मैदान में काम कर रहा है जहाँ कोई हक़ीक़ी कामयाबी हासिल करना उसके लिए मुमकिन ही नहीं।

फ़लसफ़ा का ख़ुलासा एक लफ़्ज़ में यह है: आख़िरी हक़ीक़त (ulltimate reality) को अक़्ल के ज़रिये दरियाफ़्त करना। चूँकि इंसान की अक़्ल महदूद है, वह कुल्ली हक़ीक़त का एहाता नहीं कर सकती। इंसान अपनी महदूदियतों (limitations) की वजह से तनहा हक़ीक़त-ए-आला को दरियाफ़्त नहीं कर सकता। यही वाहिद वजह है जिसकी बिना पर फ़लसफ़ा अपनी कोशिशों में नाकाम रहा।

इस महदूदियत की बिना पर इंसान के लिए इस दुनिया में सिर्फ़ दो options हैं। या तो वह जुज़ई इल्म पर क़नाअत करे जैसा कि साइंस ने मौजूदा ज़माना में किया है या वह इल्हाम से मदद लेकर कुल्ली हक़ीक़त तक पहुँचे। इन दो के सिवा तीसरी कोई सूरत अगर है तो वह सिर्फ़ तशकीक है और तशकीक अमली तौर पर मुमकिन नहीं।

हिकमत क्या है?

क़ुरआन में अल्लाह के रसूल के बारे में आया है कि वह किताब और हिकमत की तालीम देते हैं। (सुरह अल-बक़रह, 2:151) लेकिन हिकमत ऐसी चीज़ नहीं है जिसे सिर्फ़ अल्फ़ाज़ के ज़रिए पूरी तरह पहुँचाया जा सके, , जैसे कि क़ुरआन को अल्फ़ाज़ में नाज़िल किया गया। हिकमत को अल्फ़ाज़ में क़ैद नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका ताल्लुक़ ज़िंदगी के मुख़्तलिफ़ हालात से होता है। हिकमत ऐसी चीज़ है जिसे अमली तजुर्बात और हालात के तहत अख़्ज़ करना पड़ता है, और जैसा कि मालूम है वक़्त और हालात कभी यकसाँ नहीं रहते, इसलिए हर दौर में गहरी बसीरत के ज़रिये हिकमत को दरियाफ़्त करना होता है।

बदलते हुए और नामुवाफ़िक़ हालात में किसी इक़दाम को कामयाबी से हमकिनार करना— यही दरअसल हिकमत है। इसके लिए ज़रूरी है कि रसूलुल्लाह ﷺ की ज़िंदगी का गहरा मुतालअ किया जाए, और इसमें बसीरत के साथ पैग़म्बराना हिकमत को दरियाफ़्त किया जाए। मिसाल के तौर पर आप की बेसत (commencement of prophethood) के वक़्त खाना-ए-काबा में बुत रखे हुए थे, लेकिन इस मामले में आपने कोई लफ़्ज़ी हिदायत नहीं दी। इसके बजाए, आप ने अपने अमल से रहनुमाई की। लिहाज़ा हमें भी ग़ौर-ओ-फ़िक्र के ज़रिये आप के तर्ज़-ए-अमल से हिकमतें अख़्ज़ करनी होंगी।

फ़ुक़हा ने फ़िक़्ह को सिर्फ़ मसाइल-ए-अहकाम तक महदूद कर दिया, मज़ीद यह कि फ़र्ज़ी मसाइल का एक अंबार खड़ा कर दिया, मगर यह एक ऐसी रविश थी, जिसको उनसे पहले सहाबा-ए-किराम और ताबेईन ने नापसंदीदी की नज़र से देखा था। अस्ल फ़िक़्ह उन

हक़ीक़ी हालात में पोशीदा है जिनका सामना पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ को हुआ। अगर इन पर संजीदगी से ग़ौर किया जाए तो हिकमत के बहुत से नए गोशे खुल कर सामने आते हैं, जिन पर ग़ौर-ओ-फ़िक्र करके हम उन्हें मौजूदा हालात के मुताबिक़ इख़्तियार कर सकते हैं।

(मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब से गुफ़्तगू पर मबनी)

एक इंटरव्यू

ज़ेरे नज़र इंटरव्यू मिस्टर योगेन्द्र सिकंद (b.1967) ने 10 अगस्त 2007 को लिया था। इसकी रिकॉर्डिंग भी हुई थी, जो सी पी एस सेंटर में मौजूद है। इस इंटरव्यू का ख़ुलासा इफ़ादियत के पेशे नज़र दोबारा शाए किया जा रहा है)

सवाल: आप मदरसों के निज़ाम को किस तरह देखते हैं? इस वक़्त मदरसों के निसाब व निज़ाम में इस्लाह की ज़रूरत की बात हो रही है?

जवाब: बाज़ दूसरे लोगों की तरह मैं मदरसों का मुख़ालिफ़ या उसका नाक़िद नहीं हूँ। मुसलमानों को मज़हबी और सेक्युलर दोनों निज़ाम-हाए तालीम की ज़रूरत है। मुस्लिम बच्चों को दोनों तरह के मज़ामीन की वाक़िफ़ियत होनी चाहिए। लेकिन तमाम मुस्लिम तलबा के लिए यह मुतलक़न ज़रूरी नहीं कि वह कुल वक़्ती तौर पर मदरसा जाकर आलिम बनने की तर्बियत हासिल करें। अलबत्ता इतना ज़रूरी है कि समाज का एक तबक़ा इल्म-ए-दीन हासिल करे ताकि मज़हबी तालीम के हुसूल की रिवायत बाक़ी रहे। हमें मदरसों के तर्बियत-याफ़्ता ऐसे उलेमा की ज़रूरत है जो क़ुरआन, हदीस, फ़िक़्ह और अरबी

ज़बान के वाक़िफ़कार हों। जहाँ तक मदरसों में इस्लाह की ज़रूरत का सवाल है, हक़ीक़त यह है कि मैं मदरसों की जदीदकारी में यक़ीन नहीं रखता। आप क़ुरआन व हदीस की जदीदकारी नहीं कर सकते। इसलिए मैं समझता हूँ कि इस सियाक़ में जदीदकारी या जिद्दत-पसंदी की बात बिल्कुल बे-महल और ग़ैर ज़रूरी है। जदीदकारी के ताल्लुक़ से मैं कहना चाहूँगा कि हमारे जदीद स्कूल और यूनिवर्सिटियों में भी इस्लाह की ज़रूरत है। इस नुक्ते को वह लोग जो मदरसों में इस्लाह के ज़बरदस्त तौर पर हामी हैं, फ़रामोश कर देते हैं। मेरे कहने का मक़सद यह है कि तालीम का कोई भी सिलेबस हर तरह से मुकम्मल नहीं कहा जा सकता। निसाब से ज़्यादा अहमियत उसको पढ़ाने वाले की है। इसलिए कि किताबें नहीं पढ़ातीं, उस्ताद(teachers) पढ़ाते हैं। बाज़ लोगों का कहना है कि मदरसों में फ़लसफ़े और मन्तिक़ की सदियों पुरानी यूनानी किताबें पढ़ाई जाती हैं। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यूनिवर्सिटीज़ के अंग्रेज़ी शोबे में भी सदियों साल पहले लिखी हुई क्लासिकल किताबें पढ़ाई जाती हैं। मेरी नज़र में निसाब का मसअला ज़्यादा अहमियत नहीं रखता। अस्ल मसला बा-सलाहियत और ज़िम्मेदार उस्ताद का है। हमें अस्लन उनकी ज़रूरत है।

सवाल: तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मदरसों के तलबा को मॉडर्न मज़ामीन से वाक़िफ़ कराने की ज़रूरत नहीं है?

जवाब: मेरी तजवीज़ यह है कि इस मक़सद के लिए अलाहिदा ऐसे तालीमी इदारे क़ायम किए जाने चाहिएँ जहाँ मदरसों के तलबा फ़राग़त के बाद जदीद मज़ामीन की तालीम हासिल कर सकें। ख़ास तौर पर मुख़्तलिफ़ ज़बानें जैसे अंग्रेज़ी, हिंदी, वग़ैरह। ख़ुद मैंने एक रिवायती मदरसे में तालीम मुकम्मल की और फिर अपने तौर पर अंग्रेज़ी सीखी और दूसरे जदीद मज़ामीन पढ़े। मेरा ख़याल है कि मदरसों के निसाब के साथ साथ अगर मदरसों के तलबा को जदीद

मज़ामीन पढ़ने पर मजबूर किया जाए तो बिला शुब्हा यह उन पर बोझ बन जाएगा जिसे वह नहीं उठा पाएँगे। इससे मदरसे का तालीमी निज़ाम बिखर जाएगा।

सवाल: हालिया दिनों में मदरसों के फ़ारिग़ तलबा के लिए इस तरह के इदारे जिसका आपने हवाला दिया है, क़ायम किए गए हैं, आप इस ज़ाहिरे को किस निगाह से देखते हैं?

जवाब: मेरी नज़र में यह निहायत ख़ुश-आइंद क़दम है। अगरचे इसे मज़ीद मुनज़्ज़म अंदाज़ में किया जाना चाहिए। इस तरह के इदारों में बहरहाल ऐसे उस्ताद की कमी है जो पूरी स्पिरिट के साथ तदरीसी ज़िम्मेदारी निभाने पर कमरबस्ता हों। हमारे दौर में मदरसा-तुल-इस्लाह में ऐसे उस्ताद थे। उन्होंने हमारे अंदर तलाश व तजस्सुस की रूह पैदा की। तलाश व तजस्सुस की यही रूह अस्ल में इल्म व मारिफ़त की बुनियाद है, उसके बग़ैर कोई शख़्स तालीम की राह पर तरक़्क़ी नहीं कर सकता। इस रिवायत को दोबारा ज़िंदा करने की ज़रूरत है। इस वक़्त हमारे पास मदरसों के उस्तादों की ट्रेनिंग के लिए कोई इदारा नहीं है। ज़रूरत है कि मदरसों के उस्तादों को छोटे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, उनकी परवरिश और उससे जुड़े मामलों की ट्रेनिंग दी जाए। मेरे ख़याल में यह एक अहम मुद्दा है, जिस पर मुस्लिम संगठनों को ध्यान देना चाहिए।

सवाल: मदरसा के फ़ारिग़ उलेमा और यूनिवर्सिटी के तर्बियत-याफ़्ता दानिशवरों के दरमियान जो शदीद दोई(तीव्र मतभेद) और सनवियत पैदा हो गई है, आपकी राय में इसे किस तरह ख़त्म किया जा सकता है?

जवाब: मेरे बचपन में यह दोई इतनी वाज़ेह नहीं थी। उस वक़्त सेक्युलर तालीमगाहें अख़्लाक़ी अक़्दार से इस क़दर दूर नहीं थीं।

लेकिन अब सूरत-ए-हाल बहुत ज़्यादा अफ़सोसनाक है। दोनों तबक़ों के दरमियान इस दोई और खाई को दूर करने और पाटने के लिए ज़रूरी है कि दोनों निज़ाम-ए-तालीम के तलबा व उस्तादों के दरमियान, ख़्वाह वह मुसलमान हों या ग़ैर मुस्लिम, ज़्यादा से ज़्यादा इख़्तिलात और मेल-जोल हो। माज़ी में ऐसा होता था। बहुत से हिंदू मदरसों में पढ़ते थे, लेकिन अब ऐसा नहीं होता। चूँकि अब इन दोनों तबक़ों के दरमियान इस नौअ का मेल-मिलाप और बाहमी क़ुर्बत बाक़ी नहीं रही, इसलिए इन दोनों के अंदर मुफ़ाहमत की कमी पाई जाती है।

सवाल: बाज़ उलेमा आपकी इस से नाराज़ होंगे और कहेंगे कि इस तरह के मेल-जोल से मदरसा के तलबा की मज़हबी नफ़्सियात पर बुरा असर मुरत्तब होगा। इस ताल्लुक़ से क्या कहना चाहेंगे?

जवाब: मुझे इससे इत्तिफ़ाक़ नहीं है। हज़रत उमर फ़ारूक़ के बारे में मनक़ूल है कि वह हर किसी से सीखते थे और उनका यह सीखना मुख़्तलिफ़ क़िस्म के लोगों से मेल-जोल के ज़रिये होता था। दूसरों के साथ मेल-जोल के ज़रिये आप अपनी अख़लाक़ियात को मज़ीद बेहतर बना सकते हैं। नीज़ इसके ज़रिये आप दूसरे लोगों की सही शिनाख़्त और उनका एहतिराम भी कर सकते हैं। मदरसों और उनके तलबा को दूसरों के साथ मेल-मिलाप पर माइल करने और उनको मदरसा की चारदीवारी से बाहर निकालने का सबसे अहम तरीक़ा यह है कि उनके अंदर मिशनरी स्पिरिट भर दी जाए। इस मक़सद के लिए मदरसों की तरफ़ से कॉन्फ्रेंसें और सेमिनार आयोजीत किए जाएँ जिनमें मदरसों और यूनिवर्सिटीज़ के लोगों को, जिनमें मुसलमान और ग़ैर-मुस्लिम दोनों शामिल हों, बुलाया जाए। यह तरीक़ा दोनों तरफ़ मालूमात के दरवाज़े को खोलने और बाहमी ग़लत-फ़हमियों को दूर करने का ज़बरदस्त ज़रिया होगा। ख़ुद मेरी

मिसाल लीजिए! मैं रोज़ाना मुख़्तलिफ़ मज़ाहिब और समाजी पस-ए-मंज़र के लोगों से मिलता हूँ। मैं इसे अल्लाह की नेमत समझता हूँ। क्योंकि इस अमल के ज़रिये मैं मुख़्तलिफ़ तरह की मालूमात, दूसरों के तअल्लुक़ से इंसानी जज़्बा-ए-यकानग़त, नए तजुर्बात और अख़्लाक़ी अक़्दार सीखता और हासिल करता हूँ। (जारी)

सादगी की अहमियत

कहा जाता है कि ज़िंदगी का बेस्ट फ़ॉर्मूला है — सादा ज़िंदगी और ऊँची सोच।

Simple living, high thinking

सादा ज़िंदगी और ऊँची सोच दोनों का एक दूसरे से निहायत गहरा ताल्लुक़ है। जहाँ सादा ज़िंदगी है वहाँ ऊँची सोच है, और जहाँ ऊँची सोच है वहाँ सादा ज़िंदगी है। दोनों एक दूसरे के साथ हम-रिश्ता (interlinked) हैं। एक है तो दूसरा है, एक नहीं तो दूसरा भी नहीं।

सादा ज़िंदगी का मतलब यह है कि ज़िंदगी की ज़रूरतों के मामले में इंसान बक़द्र-ए-ज़रूरत पर क़नाअत करे। वह लग्ज़री (luxury) की चीज़ों के बजाय केवल ज़रूरत की चीज़ों पर गुज़ारा करे। ऐसा इंसान ग़ैर-ज़रूरी परेशानियों से बचा रहेगा और उसका ध्यान इधर-उधर नहीं भटकेगा।

सादा ज़िंदगी और ऊँची सोच दोनों एक दूसरे का हिस्सा हैं। जहाँ सादा ज़िंदगी होगी, वहाँ ऊँची सोच पाई जाएगी, और जहाँ ऊँची सोच होगी, वहाँ अपने आप ज़िंदगी में सादगी और क़नाअत पैदा हो जाएगी।

ऊँची सोच इंसान के लिए सबसे बड़ी चीज़ है। लेकिन ऊँची सोच की शर्त यह है कि आदमी सादगी पर क़नाअत करे। सादगी आदमी को इस नुक़सान से बचाती है कि वह अपने पैसे या अपने ज़राए को ग़ैर-ज़रूरी चीज़ों में लगा दे और फिर वह मक़सद के हुसूल में ज़्यादा कारगर जद्दोजहद न कर सके।

जो आदमी सादगी पर क़नाअत नहीं करेगा, वह ग़ैर-ज़रूरी तकल्लुफ़ात में फँसा रहेगा। वह हमेशा के लिए ऊँची सोच से महरूम हो जाएगा।

ज़िंदगी का लम्हा एक महदूद लम्हा है। इंसान को चाहिए कि वह इस महदूद लम्हे को भरपूर तौर पर इस्तेमाल करे। इस दुनिया में ज़िंदगी किसी को सिर्फ़ एक बार मिलती है। यह आदमी के ऊपर है कि वह चाहे तो वक़्त को इस्तेमाल करे, या वह उसे खो दे।

यह एक हक़ीक़त है कि किसी मर्द या औरत के पास जो सबसे ज़्यादा क़ीमती सरमाया है, वह वक़्त है। और वक़्त का मामला यह है कि वह किसी आदमी को सिर्फ़ एक बार मिलता है।

किसी ने दुरुस्त तौर पर कहा है — गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं।

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

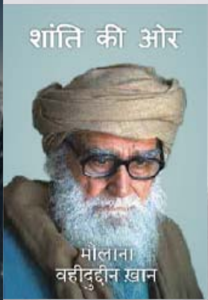

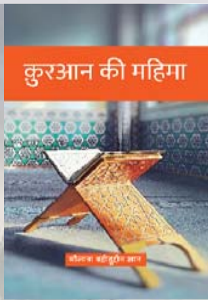

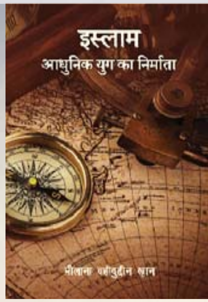

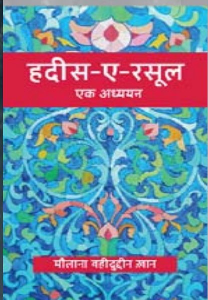

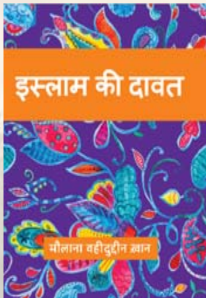

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

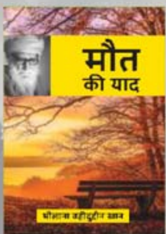

₹40/-

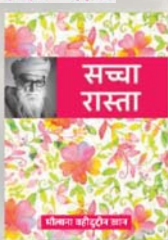

₹20/-

₹40/-

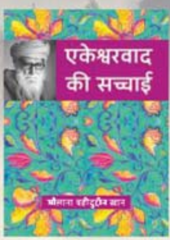

₹30/-

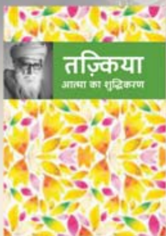

₹45/-

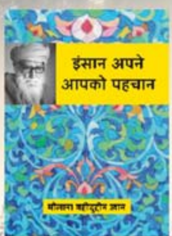

₹20/-

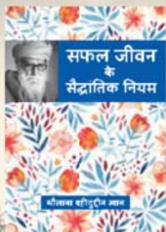

₹40/-